मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

४३

कच्छ-मांडवीमां प्राप्त एक काष्ठशिल्प

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2008

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

४३

सम्पादक:
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ४३

आद्य सम्पादक: डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

सम्पादक: विजयशीलचन्द्रसूरि

सम्पर्क: C/o. अतुल एच. कापडिया
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,
अहमदाबाद

प्राप्तिस्थान: (१) आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) सरस्वती पुस्तक भण्डार
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

अनुसन्धान एटले संशोधन. तेनी विविध, अगणित शाखाओ छे. घणीवार, कोई एक मुद्दा विषे कोई निर्णय उपर आववा माटे, अनेक विषयोनी अनेक हकीकतो के प्रतिपादनोनो साथ लेवो पडे छे; क्यारेक तो साव अप्रस्तुत के विपरीत जणातो विषय पण तेमां खप लागतो होय छे. दा.त. कोईएक महत्त्वपूर्ण अने प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार आचार्यनो समय निश्चित करवा माटे, बौद्ध अने वैदिक दर्शनना ग्रन्थो, ते धर्मोना विद्वानोनो समय, तेमणे पोताना ग्रन्थोमां प्रतिपादन करेल सिद्धान्तो के पदार्थो, क्यांक पुरातात्त्विक उत्खननमां मळी आवेल कोई खास अवशेष, - आवां आवां अनेक साधनोनो खप पडतो होय छे. अने आवा अभ्यास पछी जे निष्कर्ष आवे, तेने कहेवाय संशोधन, अनुसन्धान.

केटलाक लोको मात्र कृतिसम्पादनने ज संशोधन तरीके स्वीकारीने चाले छे. तेमना मते, बीजी बधी बाबतो माटे परम्पराए निर्णय लीधेलो ज होय छे, तेने ज अनुसरवुं उचित छे; परम्पराथी चाल्युं आवे ते खोटुं न होय. संशोधनना नामे घणां गप्पां के विकृतिओ प्रवेशे छे वगेरे.

व्यापक अने ऊंडा अध्ययननी तेमज ते माटेनी रुचिनी खामी अने तेथी ते विषे अनभिज्ञताने लीधे ज आवुं एकांगी तथा संकुचित वलण आवतुं होय छे. थोडुंक, पोताने न रुचतुं होय तेवुं बरदास्त करीने पण, वांचन-अध्ययनना फलकने विस्तारवामां आवे तो आवां वलणथी अवश्य बची शकाय.

संशोधन श्रद्धाविमुख करे तेवी धारणा साव भ्रान्त धारणा छे, एम अनुभवे कही शकाय. खरेखर तो संशोधनने परिणामे विकृतिओथी मुक्त परिवेश सुधी पहोंची शकाय छे, तेथी सत्यनुं तथ्यात्मक स्वरूप अनावृत थतां श्रद्धा वधु स्वच्छ अने बळकट बने छे.

- शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

योगीन्द्र समुच्चयविरचित
आनन्दसमुच्चयो नाम योगशास्त्रम् सं. विजयशीलचन्द्रसूरि १

आवरणचित्र-परिचय ३९

श्री मुनिरत्नसिंह विरचित
चार लघु स्तोत्रकाव्यो सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ ४०

लोंकागच्छना श्रीपूज्योना त्रण भास
सं. मुनिसुयशचन्द्र - सुजसचन्द्रविजयौ ४९

श्री सिद्धिविजय रचित
श्रीविजयदेवसूरि भासद्वय म. विनयसागर ५८

अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि भास म. विनयसागर ६३

श्रद्धाञ्जलि नलिनी बलवीर ६९

विहंगावलोकन उपा. भुवनचन्द्र ७४

पुस्तक परिचय ७८

नवां प्रकाशनो ८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगीन्द्रसमुच्चयविरचित

आनन्दसमुच्चयो नाम योगशास्त्रम्

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

(परिचय)

समुच्चय नामना कोई विलक्षण योगी पुरुषे बनावेलो '**आनन्दसमुच्चय**' नामनो योगशास्त्र-विषयक ग्रन्थ, कदाच प्रथमवार, अहीं प्रकाशित थई रह्यो छे. उपलब्ध मर्यादित स्रोतो थकी, आ ग्रन्थ तथा आ योगी विषे जाणकारी मेळववानो प्रयास निष्फल ज नीवड्यो छे. आम छतां, बे वातो निश्चयपूर्वक कही शकाय तेवी छे : १. आ ग्रन्थनी मारी पासेनी हाथपोथी अनुमानतः १५मा शतकनी जणाई छे, तेथी ग्रन्थकर्ता ते पूर्वे थया छे, अथवा ते पूर्वे आ ग्रन्थनी रचना थई छे, एम सिद्ध थई शके तेम छे. अने २. ग्रन्थकर्ता नाथसम्प्रदायना योगी-सिद्ध पुरुष छे तेवुं, ग्रन्थारम्भे ज, कर्ताए ज, वर्णवेली गुरुपरम्परानां-नामो जोतां समजी शकाय छे. प्रथम ए नामो ज आपणे नोंधीए : -

१. बुद्धनाथ, २. चैत्यनाथ, ३. लोकनाथ, ४. संवर, ५. जालन्धर, ६. कृष्णनाथ, ७. रुद्र, ८. निरञ्जन, ९. कठमठनाथ, १०. परमाणुदेव, ११. समुच्चय (ग्रन्थकार).

आमां प्रथम चार नामो वांचतां बौद्ध सिद्धो याद आवे. नामोमां पण बुद्ध दर्शननी छाप लागे. जालन्धर ते तो गोरख सम्प्रदाय के नाथ परम्परामां प्रसिद्ध नाम छे ज. कृष्णनाथ ते कान्हपा के कानीफनाथ साथे सम्बन्धित नाम लागे.

अलबत्त, ग्रन्थकार शुद्धतया योगमार्गना ज प्रवासी साधक छे, अने कोई खास धर्म के दर्शनमां बंधायेला नथी, तेनो ख्याल तो ग्रन्थना मङ्गलाचरणना पद्यथी तेमज अन्तिम प्रकरणमां छए दर्शनोनी योगपरकता जे रीते सिद्ध करी आपी छे ते परथी आवी जाय छे.

ग्रन्थमां योगशास्त्र-सम्बद्ध विशिष्ट पदार्थोनुं विशद अने मार्मिक प्रतिपादन करवामां आव्युं छे. एनुं विवरण के तेनो परिचय आपवानुं काम तो योगमार्गना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई विलक्षण साधक ज करी शके. आ विषयना तद्दन अनभिज्ञ एवा मारा जेवानुं ते काम नहि. परन्तु एक वात कही शकुं के मारी अल्पस्वल्प समजण अनुसार, आ ग्रन्थमां जे क्रमथी, जे विशदतापूर्वक, जे योगविषयक पदार्थो तेमज प्रक्रियानुं निरूपण थयुं छे, ते अन्यत्र क्यांय, होय तो पण, अद्यावधि जोवा-जाणवामां आवेल नथी. अमनस्कयोग, गोरक्षसंहिता, घेरण्डसंहिता इत्यादि ग्रन्थोमां आ विषयोनुं प्रतिपादन होय तो ते संभवित गणाय. नाथ-परम्परामां अथवा तो गोरखवाणीमां आ विषयो प्रख्यात होवा ज जोईए. श्री मकरन्द दवेना एक पुस्तकमां हमणां ज एक कण्डिका जोवा मळी. गोरखनाथनी कृति छे :

"सोलह कला चन्द्र प्रकासा, बारहकला भाणं
अनंतकला सिद्धों का मेला, रह गया पद निर्वाणं"

प्रस्तुत ग्रन्थना ५-६ प्रकरणनो विषयसंकेत ज आमां मळे छे !

समग्र ग्रन्थ आठ प्रकरणोमां निबद्ध - वहेंचायेलो छे. तेनां नामो क्रमशः आ प्रमाणे छे : १. स्थान प्रकरण; २. नाडी प्रकरण; ३. मन्त्रप्रभाव प्रकरण; ४. ध्यानभेद प्रकरण; ५. चन्द्रकर्म प्रकरण; ६. सूर्यकर्म प्रकरण; ७. सिद्धि प्रकरण; ८. मुक्ति प्रकरण. कुल २८० जेटला श्लोकोमां पथरायेलो आ ग्रन्थ छे.

प्रारम्भना ११ श्लोको प्रस्तावना जेवा छे, जेमां मङ्गल, गुरुपरम्परा दर्शावीने ग्रन्थरचनानो हेतु बताव्यो छे (श्लोक ९) : "योगशास्त्रो तो सेंकडो छे, पण केटलांय शास्त्रोमां स्पष्ट अर्थो नथी; केटलांकमां स्पष्टता छे, तो पण सम्पूर्णता के पूर्णतः स्पष्टता नथी. तेथी हुं लीलामात्ररूपे आवी खोट दूर करतुं आ शास्त्र रचुं छुं." तो १०-११मां पद्योमां कर्ता आ शास्त्रनुं साफल्य आ रीते वर्णवे छे : "बुद्धिमान् वादीओमां बीजी कोई पण बाबतमां प्रायः संवाद भले न सधातो होय, परन्तु, जो मोक्षमार्ग प्रत्ये आस्था होय तो, आवा अध्यात्मपरक प्रतिपादनमां लेश पण विसंवाद न ज थाय. अरे ! मोक्षमार्गना सहज शत्रु मनाता नास्तिको पण आ शास्त्रना उपदेशना अमलथी अनुभवाता प्रत्यक्ष लाभो विषे, अथवा ते लाभो थवाथी आ योगमार्ग विषे श्रद्धावंत थवाना ज."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवा विश्वास साथे कर्ता प्रथम प्रकरणमां 'स्थान'नुं निरूपण मांडे छे. तेमनुं कथन छे के "धर्म अने मोक्ष एम बे पुरुषार्थ छे जरूर; पण शरीरमां त्रिदोष आदि विविध दोषो संभवता होई पहेलां धर्म-पुरुषार्थमां ज प्रयत्न थाय ते जरूरी गणाय, शरीरने सुस्थित बनाववा माटे. शरीरमां स्थिरता आवे तेवां कर्म अहीं वर्णववानां छे; ते कर्मो 'स्थान'मां वर्तनारा चित्तने आधीन छे. ते 'स्थानो' नुं नामादि स्वरूप विशदताथी कर्ता आलेखे छे, जेनुं तत्त्व योगसाधकोने समजाय तेम छे. ४३मा पद्यमां विविध पदो (स्थान) हांसल थतां थतां छेवटे मळनारा 'परम पद'नी वात छे. पद्य ४४मां शरीर, सूक्ष्म शरीर, ऊर्ध्व शरीरनां माप वर्णवायां छे.

बीजा नाडी प्रकरणमां ईडा, पिङ्गला आदि नाडीओनुं वर्णन थयुं छे. त्रीजा प्रकरणमां विविध स्थानो परत्वे मन्त्रबीजाक्षरो तथा तेना प्रभावनुं मार्मिक वर्णन थयुं छे. बीजाक्षरो पण नोंधेल छे. तो चोथा प्रकरणना प्रारम्भे ज कर्ता कही दे छे के "ज्यां सुधी ध्यानसाधना न थाय त्यां लगी आ मंन्त्रो फलीभूत थाय नहि, माटे आ प्रकरणमां ध्याननुं विधान करुं छुं." अने ते रीते ज आ प्रकरणमां ध्यान धरवानी प्रक्रिया तेमज ते ते मुद्रामां ते ते प्रयोजन माटे जपवाना मन्त्राक्षरो वगेरेनुं स्पष्ट वर्णन करेल छे. तेनां फल पण वर्णव्यां ज छे.

पांचमा चन्द्र-कर्म प्रकरणमां १६ कलाओ -'शङ्खिनी' वगेरे - तथा 'शङ्खसारण' वगेरे ४२ कर्मोनां नाम तथा काम वर्णवेल छे. छठ्ठां सूर्यकर्म - प्रकरणमां सूर्यनी १२ कलाओ तथा ४२ कर्मोनां नाम - काम आदिनुं विस्तृत वर्णन थयुं छे.

सातमा प्रकरणमां पांच भूत-तत्त्वोनी सिद्धि वर्णवाई छे. क्यारे कयुं तत्त्व गौण के प्रधान होय, शेनी वध-घट क्यारे ने शी रीते-शा कारणथी थाय, तथा पांच तत्त्वोनी सिद्धि कोने मळे तथा तेना फल-फायदा शा, तेनुं वर्णन आ प्रकरणमां थयुं छे.

आठमा प्रकरणमां मन-इन्द्रियो-शरीरने वश करवापूर्वक मुक्ति केम मळे तेनुं तात्त्विक चिन्तन थयुं छे. आमां ११मा पद्यमां कर्ता भूमिका बांधतां स्पष्ट जणावे छे के "जेम नदीओ पोतानामां मस्त होवा छतां समुद्रमां प्रवेश करे छे, तेम छए दर्शनोना तत्त्वमार्ग जुदा भले होय तो पण छेवटे तो समाधि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अने योगना मार्गमां ज तेमणे आववुं पडे छे." आ पछी क्रमशः छए दर्शनवाळा केवी रीते योगमार्गनो स्वीकार करे छे तेनुं विशद चित्र कर्ता आपे छे.

एमां प्रथम शाक्य-सौगत (बौद्ध) **दर्शनीओनी वात छे.** दरेकनुं पोतानुं- पोताना दर्शननुं तत्त्वप्रतिपादन ज योगमार्गपरक होय छे **तेवी प्रस्तुति,** ते ते दर्शननां तत्त्वोनी वात लईने कर्ता करे छे, ते बहु ज रोचक अने हृदयंगम लागे छे. १२-१४ पद्योमां '**सौगत**'नी वात थई छे. १५-१९मां **नैयायिकोनी** वात छे. २०-२५मां सांख्योनो स्थिति दर्शावी छे, २६-३०मां **मीमांसकोनी** योग-साधना-परक स्थिति वर्णवी छे. तो ३१-३२ एम बे पद्योमां '**चार्वाक**' नी पण योगोपासना बतावी दीधी छे.

'चार्वाक' भूत (भौतिक जगत्) नो ज स्वीकार करे छे. तो तेने कहे छे के "भूतसिद्धि समाधि सिद्ध थया विना थाय नहि अने भूतसिद्धि थाय तेने ज अमे 'मुक्त' आत्मा गणीए छीए. एटले हे नास्तिक ! जो 'भूत' सिवाय तारा चित्तमां कशुं ज अभिप्रेत न होय तो तुं पण 'मुक्त' ज गणाय."

छेल्ले जैन दर्शननी वात ३३-३५ पद्योमां करवामां आवी छे. आमां कर्ताए जैनमतना प्रवर्तक '**जिन**'नी जगत्प्रसिद्ध मुद्रानी वात अत्यन्त सुघडताथी करी छे : "नासिकाने टेरवे पोतानी दृष्टिने टेकवीने, पद्मासनमां कायाना शिथिलीकरणपूर्वक बेठेला '**जिन**' तो, वर्तमान युगना लोकोने, पोतानी आवी अद्‌भुत मुद्रा द्वारा ज ध्यानमार्ग समजावी दे छे !" पछीनां २ पद्योमां जिन भगवाननी साधनानो अर्क कर्ताए तारवीने आपी दीधो छे ! आवुं तादृश वर्णन तो कोई नीवडेल योगी ज करी शके !

पद्य ३७-३८ मां समापनसूचक वचनो छे. तेमां कर्ता कहे छे के '**परमाणु गुरु**' नी वाणीमांथी प्रगटेल आ वचनामृतने अल्पोक्ति जेवां विकल्पात्मक वचनो वडे कोई मलिन न करशो. केम के निरीह एवा सिद्धोनां वचनो कदी पण विपरीत होतां नथी.

आ पछीनां पद्यो उपसंहारात्मक छे.

पांच पानांनी आ प्रति महदंशे शुद्ध-अतिशुद्ध छे. क्यांक कोईक पाठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तूटतो जोवा मळे छे. ते माटे आ ग्रन्थनी अन्य प्रतिओ शोधवी रही. कर्तानुं भाषा, कवित्व, छन्द आदि परनुं प्रभुत्व अद्‌भुत कहेवुं पडे तेवुं छे, तेनो अनुभव काव्ये काव्ये विद्वानोने थशे तेमां संशय नथी.

आदर्शभूत प्रति **खम्भात** स्थित **श्री विजयनेमिसूरिज्ञानशाला**ना भण्डारनी छे. तेमां अनेक स्थाने लेखके पाठान्तरो पण नोंध्यां छे, तेमज टिप्पणो पण लखेल छे. ते दरेकनो आ सम्पादनमां समावेश कर्यो ज छे. आ ग्रन्थनी बीजी प्रति शोधवा माटे घणी मथामण करी. परन्तु आनी प्रत तो क्यांय होवानी भाळ न मळी, बल्के कोईने आ ग्रन्थ तथा कर्ताना नाम विषे जाणकारी पण न होय तेवुं लाग्युं. फक्त कोबाना **श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानभण्डार**मांथी विद्वान् मुनिश्री अजयसागरजीना प्रयत्नथी आ ग्रन्थनी एक अर्वाचीन अशुद्ध प्रति मळी, जेनो उपयोग एकाद स्थाने पाठपूर्ति माटे थई शक्यो छे. ते संस्थानो आ माटे आभार मानुं छुं.

कोईक विशिष्ट योगाभ्यासी साधक आ ग्रन्थनो रूडो अभ्यास करे, अने आमां प्रतिपादित बाबतोनो रसथाळ जिज्ञासुओ समक्ष खुल्लो मूके तेवी भावना साथे विरमुं.

आनन्दसमुच्चयः ॥

ॐ नमः श्रीपरब्रह्मणे ॥

यत्र वित्रासमायान्ति तेजांसि च तमांसि च ।
चिदानन्दमयं वन्दे महीयस्तदहं महः ॥१॥

प्रबुद्धनिःशेषपदार्थतत्त्वः **श्री बुद्धनाथः** प्रथमं पुनातु ।
विश्वत्रयीप्रीणनबद्धबुद्धिः **श्रीचैत्यनाथः** श्रियमातनोतु ॥२॥

जयति जगदरिष्टोपद्रवद्रावहेतुस्त्रिभुवनजनरक्षादक्षिणो **लोकनाथः** ।
तदनु जयति विश्वप्लावनोद्‌भ्रान्तमोहार्ण्णवनियमनलीलासंवरः **संवरश्च** ॥३॥

जयति निबिडमाद्यद्दम्भसंरम्भमुद्राविघटनपटुरुच्चैः किञ्च **जालन्धरा**रव्यः ।
धवलयतु जगन्ति स्फारताराधिनाथद्युतिविजयियशोलिः **कृष्ण**नामापि **नाथः** ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वशंवदीभूतसमस्तसिद्धि - र्भद्राणि **रुद्रस्तनुताज्जनस्य** ।
ज्योतीरसाश्मद्युतिचित्तवृत्ति - **र्निरञ्जनः** कल्मषमुच्छिनत्तु ॥५॥

नाथः कठमठनामा कामादिविपक्षपक्षजिज्जयति ।
श्रीमत्परमाणुगुरुं गुरुमहिमनिकेतनं नौमि ॥६॥

नटत्वं किं तत्त्वं पिहितविषये वेषविषये
न दम्भः संरम्भः किमु [य]ममये स्वस्वसमये ।
अजिह्मं न ब्रह्म प्रमदकलिते योगललिते
गुरुत्वं सत्त्वं वा यदि न **परमाणोः** परिणतम् ॥७॥

एतस्मात् **परमाणुदेवसुगुरो**स्तत्त्वामृताम्भोनिधे -
र्यः प्राप्त् परमप्रसादसुभगं तत्त्वोपदेशामृतम् ।
तेनाऽऽ**नन्दसमुच्चय**ाभिधमिदं शास्त्रं जगज्जीवनं
योगीन्द्रेण समुच्चयेन रचयाञ्चक्रे कृपाम्भोभृता ॥८॥

शास्त्राण्यत्र परःशतानि भुवने सन्त्येव किन्तु स्फुटो
नार्थः केष्वपि केष्वपि[1] स्फुटतरोऽप्यर्थः समस्तो नहि ।
शास्त्रेऽमुत्र ततो गिरां पुर इव प्रादुर्भवद्वस्तुनि
स्फीतार्थग्रथिते फलेग्रहि मम स्यादेव लीलायितम् ॥९॥

नानाकार[2]मतिर्विचारचतुरा न प्रायशो वादिना -
मन्योन्यस्य समस्तवस्तुषु वचःसंवादमेदस्विनाम्[3] ।
किन्तु स्यादपवर्गमार्गविषयश्रद्धावतः कस्यचि-
न्नाध्यात्मप्रतिपत्तिपर्वणि विसंवादप्रवादः क्वचित् ॥१०॥

अध्यात्मसिद्धिजनितं जनतातिवर्ति
प्रत्यक्षसिद्धमखिलं फलमश्नुवानः ।
अत्रोपदिष्टमपवर्गनिसर्गवैरी
न श्रद्दधीत किमु नास्तिकपुङ्गवोऽपि ? ॥११॥

---

१. **तेष्वपि** । २. **०मतिप्रचारविधुरा** । ३. **मेदस्विता** ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इह प्ररोहत्पुरुषार्थपल्लवा प्रायः प्रवृत्तिर्मतिशालिनां मता ।
परापरत्वव्यतिभिन्नवैभवं द्विधा च सन्तः पुरुषार्थमभ्यधुः ॥१२॥

परं शरीरे शरदभ्रगर्भ - सगर्भता निर्भयमभ्युदेति ।
बलूल-वातूल-विलोलतूल-लीला समुन्मीलति जीवितेऽपि ॥१३॥

ततः पुमर्थे प्रथमे हि देहिना - महो ! विहर्तुं पदवी दवीयसी ।
दधुर्ममाप्यर्थसमर्थनास्पदे पदं तदस्मिन्नपरे गिरः पुरः ॥१४॥

स्थेमानमानेतुमतः शरीरं कर्माणि निर्मातुमुपक्रमोऽयम् ।
स्युः स्थानकस्थायिनि तानि चित्ते तदुच्यते स्थानकचक्रवालम् ॥१५॥

ध्रुवस्य चक्रं धुरि दक्षिणस्य चक्रं ततः कुण्डलिनीमुखस्थम् ।
स्वयम्भुवो लिङ्गपदस्य चक्रं देवीगुहास्थानमथापि चक्रम् ॥१६॥

चक्रं वायो रेचकस्योदयार्थं, पश्यन्ती वाक् स्थानचक्रं तदूर्ध्वम् ।
चक्रं चातः सूर्यरज्यत्कलाया - स्तस्माच्चक्रं गुप्तवातोदयाय ॥१७॥

ऊर्ध्वं तस्मादादिरक्तस्य चक्रं चक्रं चाऽन्यद् यत्र नादोऽभ्युदेति ।
आहुश्चक्रं कुण्डलिन्याश्च तस्मा- दादेश्चक्रं कूर्मचक्रं तदूर्ध्वम् ॥१८॥

चैतन्यचक्रादथ देहकन्दो वराङ्गचक्रादपि शक्तिचक्रम् ।
तस्योपरिष्टादथ मूलकन्द - ततोऽपि चन्द्रद्युतिमण्डलं च ॥१९॥

आधारचक्रं गुद-लिङ्गमध्ये, पर्णैश्च वर्णैश्च युतं चतुर्भिः ।
पुरीषभाण्डस्य ततोऽपि चक्रं चक्रं तथाऽस्योपरि सौत्रभाण्डम् ॥२०॥

साधिष्टानं लिङ्गमूलेऽथ चक्रं युक्तं षड्भिस्तच्च वर्णैर्दलैश्च ।
विज्ञातव्यं तस्य नाभेश्च मध्ये बद्धं सिद्धैरुड्डियाणाख्यपीठम् ॥२१॥

रोमोत्पत्तिस्थानचक्रं तदूर्ध्वं सार्द्धास्तिस्रः स्युर्यतो रोमकोट्यः ।
अस्थ्युत्पत्तिस्थानचक्रं च तस्मात् षष्टिर्यस्मात् त्रीणि चास्थ्नां शतानि ॥२२॥

चक्रं शुक्रप्रभवमथ चोत्पत्तिचक्रं कलाया -
श्चक्रं चाऽन्यत् तदुपरि यतः षड् रसाः प्रोल्लसन्ति ।
चक्रं वायोः प्रसरति रसो यत्र चान्नोदकानां
चक्रं चाऽऽस्ते प्रकटपवनः श्वासरूपो यतः स्यात् ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मग्रन्थिर्नाडिकानां सहस्रै - र्द्वासप्तत्या मूलकन्दीकृतोऽस्ति ।
अन्यत्र्यास्ते चक्रमुज्जृम्भतेऽसौ यस्मिन् वह्निः पाकहेवाकसिद्धः ॥२४॥

एकैकशो दशविभेदविभक्तमस्ति प्राणादिकं पवनपञ्चकमेतदूर्ध्वम् ।
नाभौ ततोऽपि मणिपूरकचक्रमस्ति पत्राणि यत्र दश सन्ति तथाऽक्षराणि ॥२५॥

एतस्माद् गुणतत्त्वबुद्धिविषयस्थानं तथाऽनन्तरं
सिद्धज्ञानगुहापदस्य तु भवेच्चक्रं ततश्च क्रमात् ।
चक्रं मध्यमवाक्पदस्य पृथिवीमुद्रास्पदं चक्रम-
प्यास्ते कुम्भकवायुचक्रमपरं हंसस्य चक्रं ततः ॥२६॥

ॐकारचक्रं हृदि कण्ठकस्य चक्रं ततो द्वादशवर्णपर्णम् ।
अनाहतं वक्षसि लक्षणीयं तदूर्ध्वमावेशपदं वदन्ति ॥२७॥

ध्यानस्थानं स्थानमानन्दरूपं तस्मादूर्ध्वं विष्णुदेवास्पदं च ।
कण्ठस्थाने चाथ चक्रं विशुद्धेः पत्राणि स्युः षोडशाऽत्र[1] स्वराश्च ॥२८॥

चक्रं चाऽस्मादधिवसति वाग् वैखरी शब्दशक्ते -
र्मूलस्थानं तदनु ललनानामकं [2]लम्बिकायाम् ।
चक्रं तच्च द्व्यधिकदशभिः शासितं पर्णवर्णै -
रास्ते चाऽन्यत् तदनु पुरुषस्थानतो बुद्धितत्त्वम् ॥२९॥

मुद्रास्पदं च पवनस्य ततोऽम्बुमुद्रा देव्यादिमण्डलमतः क्रमतः समस्ति ।
सारस्वतस्तदनु तिष्ठति वाक्यकन्द-स्तस्माच्च पूर्णगिरिपीठमिति प्रतीतम् ॥३०॥

नासा[3]भ्यन्तरतस्तृतीयतियडाचक्रं प्रकाशा[4]स्पदा -
दाज्ञाचक्रमिदं त्रिवर्णकदलं भ्रूमध्यमालम्बते ।
स्थानं शब्दलयं कपालकुहरस्याऽन्तः प्रतिष्ठां गतं
मूर्द्धन्यूर्ध्वमतः कदम्बकगुहास्थानं समुज्जृम्भते ॥३१॥

तस्मात् पूरकवायुचक्रममुतः पीठं च जालन्धरं
विश्रामाय समस्ति चक्रमपरं षण्णां रसानां तथा ।
तस्याऽनन्तरमस्ति चाऽमृतकलाचक्रं ततोऽपि क्रमाद्
बिन्दुस्थानमथास्ति पञ्चविषयासक्तेन्द्रियाणां पदम् ॥३२॥

---

१. षोडशाऽस्य ॥ २. घण्टिकायाम् ॥ ३. नासास्या० ॥ ४. प्रकाश्या० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारे वसन्ति सततं वपुषः सुषुम्णा - धारा --- मतश्च कदम्बगोलः ।
नक्षत्रमण्डलमतः क्रमतो दलानां यस्मिन् परिस्फुरति विंशतिरष्टयुक्ता ॥३३॥

अतो महापद्मवनं विदुर्बुधाः स्याद् ब्रह्मरन्ध्रं तदन्तरं पुनः ।
अथाऽपरं ब्रह्मपदं प्रचक्षते शुक्रस्य चक्रं च भवेदनन्तरम् ॥३४॥

मूलकुण्डलिनी स्थान - चक्रं सप्तदशच्छदम् ।
एतस्मात् परतः पीठं कामरूपं प्रचक्षते ॥३५॥

सहस्रपत्रान्धितमूर्ध्वशक्ति - चक्रं तदूर्ध्वं ध्वनिचक्रमस्ति ।
स्थानं ततो विस्मरणं विसर्ग्ग - स्थानं ततः क्रोधकृशानुचक्रम् ॥३६॥

चक्रं च स्मरणस्य केवलिलयस्थानं तथाऽनन्तरं
विज्ञातव्यमथोर्ध्वमीश्वरलयस्थानं ततोऽपि क्रमात् ।
स्थानं रुद्रलयं ततोऽपि च भवेद् विष्णोर्लयस्थानकं
स्थानं ब्रह्मलयस्य तस्य च पुरः शक्तेर्लयस्थानकम् ॥३७॥

तद् द्वितीयतियडाह्वयचक्रं ब्रह्मकर्णविवरैक्यगतं यत् ।
षड्दलं तदनु मानसचक्रं नादचक्रममुतः परमाहुः ॥३८॥

सलिलमयमुदस्तादित्यपादाब्जजाग्रद्-
द्युतिमहिमहिमांशोश्चक्रमस्ति क्रमेण ।
इह सकलकलासु स्फूर्तिवर्ण्यासु वर्णा-
नभिदधुरभिरूपाः षोडशाध्यायरूपान् ॥३९॥

स्थानं तस्मादचलवनमित्यस्ति तस्योपरिष्टा-
च्चक्रं चैवाऽमृतमयमिडा-पिङ्गला-शङ्खिनीनाम् ।
चक्रे चक्रं प्रथमतियडेत्युन्मनीचक्रमस्मा-
च्चक्रं चाऽन्यत् तदुपरि भवेदुत्तरस्य ध्रुवस्य ॥४०॥

विश्रामाय च चक्रमस्ति मरुतो लिङ्गं ततः पश्चिमं
चक्रे च भ्रमरस्य तिष्ठति महाशून्यं ततोऽपि क्रमात् ।
आस्ते स्थानमपि त्रिवर्णमपरस्थानं तथाऽनन्तरं
स्थानं मानसवायुर्पुष्टिलयमित्येतानि सर्वाण्यपि ॥४१॥

१. वायुपृष्ट० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः कायद्वारोपरि पदमशब्दं प्रथमत-
स्ततोऽस्पर्शं तस्मादरसमथ चाऽरूपमपरम् ।
अगन्धं चैतस्मादकुलममलं चापि परत-
स्तदूर्ध्वं चाऽनन्तं समरसमतश्चापि सहजम् ॥४२॥

नित्यं ज्ञानं शिवपदं निरञ्जनपदं तथा ।
शक्तिपदं चाऽऽदिपदं तदन्ते परमं पदम् ॥४३॥

शरीरमेतत् किल देहभाजां स्यादात्मतालैः प्रमितं चतुर्भिः ।
सूक्ष्मं तु तालार्द्धमधो विवृद्ध-मूर्द्धर्वं तु तालेन महद् वदन्ति ॥४४॥

यदत्र मातृप्रतिमापि धात्री [1]गतः क्षतानामपि भूरुहाणाम् ।
शिखाग्ररोधाद् विदधाति नाशं सूक्ष्माङ्गनाशः स्फुटमत्र हेतुः ॥४५॥

अधः शरीरस्य ततः स्थितानि स्थानानि चत्वारि विचारितानि ।
अशब्दधामप्रभृतीनि मूर्ध्नोऽप्यूर्ध्वं पुनः सप्तदशोदितानि ॥४६॥

इति **श्रीसमुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चया**भिधाने योगशास्त्रे **स्थान**प्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥

नैरन्तर्यं स्थानकानुक्रमस्य, ब्रह्मग्रन्थौ कथ्यमाने नहि स्यात् ।
तस्मादेतन्नाडिकानां स्वरूपं, स्थानव्यक्त्या साम्प्रतं कीर्तयामः ॥४७॥

भवन्ति देहे दश मूलनाड्यः प्रत्येकमेतासु वसन्ति भेदाः ।
द्वाभ्यां शताभ्यामधिकाः सहस्राः, सप्त स्फुटस्थाननिवेशभाजः ॥४८॥

इडोत्तरस्यां दिशि भाति तस्यां पुरो यशा पृष्टगता कुहूः स्यात् ।
वामेषु नाशापुटकान्त-नेत्र-श्रोत्रेषु तासां क्रमशः प्रवाहः ॥४९॥

स्फुटतरपरिरम्भा नासिकान्ते नितान्तं
कलयति किल केलिं पिङ्गला दक्षिणेऽस्मिन् ।

---

१. धात्री यतक्षता० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुर इह गजजिह्वा दक्षिणं चक्षुरेति
श्रवणमिदमुपास्ते पृष्टतस्त्वल्मुखाख्या ॥५०॥

नाशान्तःस्था स्पृशति सततं ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्णा
पूषा तस्याः स्फुरति पुरतो गुह्यदेशे वसन्ती ।
गान्धारीति प्रसरति गुदस्थानगा पृष्टतस्तु
ज्ञेयै शङ्खिन्यथ च दशमी देहशाखाचतुष्के ॥५१॥

प्राणः प्राणादिडास्थादुपचयमयते रेचकादित्रयं च
व्याधत्तेऽसौ यशास्थः कृकरमरुदथ क्षुत्तृषोः प्रौढिमानम् ।
वृत्तिं कूर्मः कुहूस्थः प्रथयति नयनामीलनोन्मीलनानां
किं चालस्यप्रणाशं जनयति जगतामुच्चकैर्दीपनं च ॥५२॥

स्यात् पिङ्गला खेलदुदानवायो-रूर्ध्वं रसादेर्गमनं व्यथा च ।
शोषुं तथा शूलमुशन्ति सन्तो धनञ्जयाख्याद् गजजिह्विकास्थात् ॥५३॥

नागो वायुर्योयुमस्त्युल्मुखाया[1]-मुद्गारः स्याद् वान्तिरोधश्च तस्मात् ।
किं चोपास्ते यः समानः सुषुम्णां पुष्ट्यारोग्ये साम्यमस्माद् रसादेः ॥५४॥

व्यानात् संग्रहमोक्षसंवृतिविवृत्यादीनि पूषा स्थिताद्
गान्धार्या मलमूत्रशुक्रसरणासक्तीस्तथा पानतः ।
शङ्खिन्यामथ देवदत्तपवनाज्जृम्भासमभ्युन्नतिं
हिक्काङ्गस्फुटनालसत्त्वजडतानिद्रागमांश्चाऽभ्यधुः ॥५५॥

इति **श्रीसमुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चया**भिधाने योगशास्त्रे
नाडीप्रकरणं द्वितीयं समाप्तम् ॥

चक्रेष्वमीषु स्फुटवर्णपर्णै - र्भवन्ति चक्राणि नव प्रधानम् ।
तदेषु विस्पष्टफलोत्तरङ्गान् क्रमेण वर्णान् परिवर्णयामः ॥५६॥ १

*ईमित्यस्मात् स्फुरति परमानन्द आधारचक्रे
वर्णादाविर्भवति सहजानन्द ऐमित्यतश्च ।

---

१. संवसत्युल्मुखाया० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरानन्दोऽभ्युदयमयते नित्यमोङ्कारवर्णाद्
योगानन्दः पुनरुदयति क्लीमिति व्यक्तवर्णात् ॥५७॥ २

ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इत्यक्षरेभ्यः स्वाधिष्ठाने प्रश्रयानुक्रमेण ।
क्रौर्यं तस्माद् गर्वनाशोऽथ मूर्च्छा-ऽवज्ञा चाथ स्यादविश्वासभावः ॥५८॥ ३

द्रूमित्यक्षरतः [1]सुषुप्तिरुदये तृष्णा ज्रमित्यक्षरा-
दीर्ष्या द्रीमिति वर्णतः पिशुनता ड्र्मों वर्णतो जायते ।
लज्जा ज्रीमिति वर्णतः प्रभवति च्छ्रें वर्णतः स्याद् भयं
म्क्षेमित्यक्षरतो घृणाऽभ्युदयते ङ्क्रौंतश्च मोहो भवेत् ॥५९॥ ४

क्लीमित्यमुष्मादुदयेत् कषायः श्रीं वर्णतश्चापि भवेद् विषादः ।
इति क्रमेण प्रभवन्ति भावा दशापि चक्रे मणिपूरकाख्ये ॥६०॥ ५

भवति स इति वर्णाल्लौल्यभावप्रणाशः
कपटमपि पवर्णाज्जृम्भते ठाद् वितर्कः ।
समुदयमनुतापः[2] पर्युपास्ते मुवर्णाद्-
विरचयति रिवर्णः शश्वदाशाप्रकाशम् ॥६१॥ ६

छाच्चिन्ता स्फुरति च वर्णतः समीहा
मावर्णादथ समता मतश्च दम्भः ।
वैकल्यं तदनु यतो णतो विवेको-
ऽहङ्कारष्टत इति सन्त्यनाहतेऽमी ॥६२॥ ७

अ इ उ ऋ लृ ए ओ अं रूपाः स्वराः प्रणवं ततः
क्रमपरमथोद्वीथं हुं फुट् ब(व)षट् परतः स्वधा ।
तदनु च परं स्वाहा तस्मान्नमश्च ततोऽमृतं
तदिति सकलान् सूक्ष्मानम्भः स्वरान् परितन्वते ॥६३॥ ८

आतः खड्ज इती-श्व(स्व)रात्तु ऋषभो गान्धार ऊकारतः
स्याद् ॠतोऽप्यथ मध्यमः स्फुटमथो लृकारत पञ्चमः ।
ऐतो धैवत औ स्वरात् समुदयं धत्ते[3] निषादो विषं
वल्गन्त्यः स्वरतो बहिः पुनरमी चक्रे विशुद्धेः स्वराः ॥६४॥ ९

---

१. सुषुप्तमुदये । २. ०मनुरूपः । ३. दत्ते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकाराद् भवति मदः **स**तश्च मानः
स्नेहः **पा**त् प्रभवति **शा**क्षराश्च शोकः ।
खेदोऽपि स्फुरति [1]**यु**तो **रि**तश्च लाभो
देवर्णादरतिरतः समुज्जिहीते ॥६५॥ १०

चात् संभ्रमो माक्षरतश्च घूर्णिः
श्रद्धा **प**वर्णादुदयं प्रयाति ।
सन्तोषपोषश्च यतो **ण**काराद्
ग्रन्थोपरोधो ललनाख्यचक्रे ॥६६॥ ११

श्रीतः सत्तां सात्त्विकोऽभ्येति भावो वर्णाद् **भ्रूं**तो राजते राजसोऽपि ।
क्लीमित्यस्मात् तामसो मासलः स्या-देते चाज्ञाचक्रमाक्रम्य तस्थुः॥६७॥ १२

हंतः कृपा स्फूर्जति **सा**त् क्षमा च **छा**दार्जवं धैर्यमतो **द**वर्णात् ।
विरागता **ध्रा**च्च धृतिश्च **फा**तो हर्षो **वि**तो हास्यमतश्च **री**तः ॥६८॥ १३

रोमाञ्चो यो **च**वर्णात् [2]**पा**माश्रुगितो **स**तः ।
स्थिरत्वं च गाम्भीर्यमपि **दु**वर्णात् **की**वर्णादुद्यमः स्फुरति ॥६९॥ १४

स्वच्छत्वमाविर्भवति **र्त्ति**वर्णा-दौदार्यमूर्जस्वि भवे**च्च**वर्णात् ।
एकाग्रता **प्री**त इतीह भावाः कलाश्रिताः षोडश सोमचक्रे ॥७०॥ १५

अतो मनश्चक्रमवेहि यत्र प्राच्ये दले भूतयुतिस्वभावे ।
श्लंवर्णतः सुप्त इवाग्निरूपो **घ्न**न्तश्च याम्ये तु रसोपयोगः ॥७१॥ १६

घ्राणं गन्धवहात्मके वरुणदिक्पत्रे **स्तु**मित्यक्षरात्
रूपं **है**मिति वर्णतो जलमये स्यादुत्तरस्याः च्छदे ।
प्रैतः स्पर्शसमुद्भवः पुनरधःपत्रे पृथिव्यात्मके
श्रैतस्योर्ध्वदले मरुत्पथमये शब्दप्रकाशो भवेत् ॥७२॥ १७

इति श्री**समुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चया**भिधाने श्रीयोगशास्त्रे
मन्त्रप्रभावप्रकरणां तृतीयं समाप्तम् ॥

---

१. **मुतो** । २. **द् व्यागाश्रु०** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* आधारचक्रे ईं ऐं ह्रीं क्लीं ॥४॥ १। स्वाधिष्ठाने ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॥६॥२। मणिपूरके ढ्रूं ज्रं ढ्रीं ड्मों ज्रीं छ्रैं म्क्षें ङ्कौं क्लीं श्रीं ॥१०॥३। अनाहते स प ठ मु रि छ च मा म य ण ट ॥१२॥४। विशुद्धिचक्रे अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ॥१६॥५॥ ललनाचक्रे आ स प श यु रि दि च म प य ण ॥१२॥६॥ आज्ञाचक्रे श्रीं भ्रूं क्लीं ॥३॥७॥ सोमचक्रे हं स छ द ध्र फा वि री यो गि स दु की र्त्ति च प्री ॥१६॥८॥ मनश्चक्रे श्लं घ्नं सुं(स्नुं) ह्रैं प्रै श्चै ॥६॥९।

४, ६, १०, १२, १६, १२, ३, १२ (?१६), ६ ॥

अमी स्फुटध्यानविधानवन्ध्याः प्रायो न मन्त्राः फलिनो भवन्ति ।
यथोपदेशं क्रमशः फलाढ्यं तदुच्यते ध्यानविधानमेतत् ॥७३॥ १७(१८)

आधारचक्रं चतुरङ्गुलोच्छ्रयै-र्दलैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलायतैः ।
दूर्वाङ्कुरच्छायधरं वदन्ति तदन्तरस्थं पुरुषं विचिन्तयेत् ॥७४॥१८(१९)

तद्वर्णमेकं कमलासनस्थं काष्टाचतुष्काभिमुखस्थदेहम् ।
निमेषशून्यीकृतलोचनं च स्वयं च संस्थानमिदं दधानः ॥७५॥१९(२०)

मन्त्रमक्षरचतुष्कनिर्मितं स्पष्टमष्टशतसंख्यया जपन् । "ईं ऐं क्ली" ॥
वातदोषमथ शाकिनीग्रहं स्थावरं च गरलं हरत्यसौ ॥७६॥२०(२१)॥१

साधिष्ठाने षड्दलाम्भोजरूपे सौवर्ण्णश्रीभाजि पद्मासनस्थम् ।
अर्द्धोन्मीलल्लोचनं स्वर्णवर्णं ह्रद्विन्यस्ताङ्गुष्टतर्जन्युपान्तम् ॥७७॥ २१(२२)

न्यस्तेक्षणं तत्र च तत्स्वरूपो योगी जपन्नक्षरषट्कमन्त्रम् । "ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः" ॥
फणाविहीनस्य विषं महाहे-र्निहन्ति भूतप्रभवं च दोषम् ॥७८॥ २०(२३)॥२

मणिपूरकपङ्कजे दशास्त्रे गुदमेंढ्रान्तरवर्तिपार्ष्णिभागम् ।
गरुडासनसंस्थमुष्णरश्मि-प्रतिमं मीलितपाणिपद्मयुग्मम् ॥७९॥ २१ (२४)

ध्यायन् पुरुषं स्वयं तथास्थो दिक्चक्र क्रमतोदशाक्षरोत्थम् ।
"ढ्रूं ज्रं ढ्रीं ड्मों ज्रीं छ्रैं म्क्षें ङ्कौं क्लीं श्रीं" ॥
मन्त्रं वारान् यः शुचिश्चतुर्भि(?)सहितां षष्टिमुदीरयन् मुनीन्द्रः ॥८०॥ २४ (२५)

---

१. ०मेनं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वातव्याधिमुपाधिसम्भवविषं श्लेष्मप्रकोपं तथा
मूलादेव निहन्त्यथो यदि मनाक् सम्मील्य नेत्रद्वयम् ।
विन्यस्यन् करकुड्मले जपति तं मन्त्रं विलोमाक्षरं
कल्पान्तादपि दष्टकस्य कुरुते स्वैरं [1]तदाकारणम् ॥८१॥ २५ (२६)॥३

चक्रेऽनाहतसंज्ञके परिणमज्जम्बूफलश्यामले
न्यस्यन्तं भुवि वामपाणिकमलं जानौ च सव्यं करम् ।
संवीतस्फुटयोगपट्टनिभृतं चक्षुस्तथाऽन्तर्मुखं
तत्त्वं तं सहजं स्मरन्नरमिति ध्याता तथैव स्थितः ॥८२॥ २६ (२७)

मन्त्रमष्टशतकल्पितमानं द्वादशाक्षरममुं समुदीर्य ।
जङ्गमादिविषवेर्धमशेषं [2]दोषजातमपि च प्रतिहन्ति ॥८३॥ २७ (२८)

किञ्च रात्रिन्दिवं योगी तदेकध्यानमानसः ।
अतीन्द्रियमपि ज्ञान-मासादयति सादरः ॥८४॥ २८(२९) ॥ ४

मन्त्रः "स प ठ मु रि छ च मा म य ण ट" ॥

विशुद्धचक्रे घनसारवर्ण-मेकत्र सम्मीलितपाणिपादम् ।
तं सम्पुटस्थानकसंस्थदेहं तदन्तरन्यञ्चितलोचनं च ॥८५॥ २९ (३०)

स्मरन्नरं नित्यमिति स्वयं च तथास्थितो मन्त्रमुदीरयेद् यः ।
विषं न किञ्चित् प्रभवत्यमुष्य सारस्वतं चाद्भुतमभ्युदेति ॥८६॥ ३०(३१) ॥५

मन्त्रः "अइउऋलृएओअं प्रणवउद्गीथ हुं फुट् बषट् स्वधा स्वाहा ॥" बहिः
पक्षे "आ ई ऊ ॠ ऌ ऐ औ अः नमः अमृतं " ॥

यश्चक्रे ललनाभिधे विचिनुते बन्धूकबन्धुद्युतिं
साक्षाद् दक्षिणपादपद्मविलसत्सद्योगपट्टस्थितिम् ।
ईषन्मीलितलोचनं नरमसौ दंष्ट्रानखादेर्विषं
शूलादिज्वरदोषपोषमपि च व्यालुम्पति प्राणिनाम् ॥८७॥ ३१ (३२) ॥ ६

"आ स प श यु रि दि च म प य ण" ॥

आज्ञाचक्रे पाटलापाटलाङ्गं वामे पादे प्रोल्लसद्योगपट्टम् ।
भ्रूयुग्मान्तर्न्यस्तनेत्रं पुमांसं पश्यन् योगी मन्त्रमुच्चारयंश्च ॥८८॥ ३२ (३३)

---

१. तदाभारणं । २. ०विषवेगविशेषं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"श्रीं भ्रूं क्लीं" ॥
शाकिनी-भूतसम्भूतदोषग्रह-प्रेतसंघातशङ्काविषोपद्रवान् ।
पूर्वदष्टस्य सम्भावितां भारणां दारुणामप्यसौ दारयत्यादरात् ॥८९॥ ३३(३४) ॥७

सोमस्य चक्रे चरणद्वयोर्द्ध्वं न्यस्यन्नृजूत्तानितपाणियुग्मम् ।
स्मरन् दृशा शून्यमवेक्षमाणः प्रसन्नमूर्त्तिः कमलासनस्थः ॥९०॥ ३४ (३५)

शीतांशुमण्डलमखण्डमनुस्मरन् यो मन्त्रं जपत्यवहितः सुहितान्तरात्मा ।
स व्याधिबन्धमखिलं च विषं निहन्ति सौभाग्यभाग्यमपि चाद्भुतमभ्युपैति
॥९१॥३५(३६) ॥८

"हंस छद" इत्यादि ॥
चक्रे मानसनामनि स्फटिकवद् ध्येयप्रभेदस्फुर-
न्नानावर्णविनिर्णये नयनयोः स्वैरप्रचारं दिशन् ।
स्वच्छन्दासनपाणिरुज्ज्वलमतिर्यो मन्त्रमुच्चारयेत्
कार्याण्यार्यमनाः स नाम कुरुते दीप्तानि सौम्यानि च ॥९२॥ ३६ (३७) ॥९

"श्लं घ्नं" इत्यादि ॥
कायद्वारे नियमितमरुच्चारमाकारवन्ध्यं
कुर्वन् वर्णाक्षरविरहितं ध्यानमध्यात्मनिष्ठः ।
प्राप्नोत्युच्चैरणिम-महिमाग्रेसरं सिद्धिजातं
जाताभ्यासः परपदभवं वैभवं चाभ्युपैति ॥९३॥ ३७ (३८) ॥१०

इति श्री **समुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चय**ाभिधाने श्रीयोगशास्त्रे
ध्यानभेदप्रकरणं चतुर्थं समाप्तम् ॥

अत्र त्रियामारमणः शरीर-माप्यायते षोडशभिः कलाभिः ।
प्रत्येकमुल्लासिगुरूपदेशै-स्तां कर्मभिर्निर्मलतां भजन्ति ॥९४॥ १

तन्वती तनुधातूनां रूचं शङ्खविजित्वरीम् ।
कर्मत्रयकृतज्योति-र्द्योतते **शङ्खिनी** कला ॥९५॥ २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]देव्यादिमण्डलगतं विरचय्य चेतः संगृह्य शङ्खु इव भूरिसमीरवीरम् ।
स्तोकं विसारयति नासिकया बहिर्यत् तच् **शङ्खुसारणमिति** प्रथयन्ति कर्म ॥९६॥३

ऊर्ध्वीकृतेन चरणद्वितयेन मूर्द्धा-वष्टम्भतः सरलतां गमिते शरीरे ।
आक्रामति स्मरणचक्रभुवं मनो यत् तत् कर्म विश्रुतमिहाऽभिधया **कपाली** ॥९७॥४

[३]विश्रामधामनि निवेश्य मनो रसाना-मङ्गुष्टवक्त्रपरिपीडितलम्बिकाग्रः ।
स्थित्वोत्कटो मुखरसं विनिपातयेद् यत् तत् कर्म **पातनमिति** प्रथयाम्बभूव
॥९८॥ ५॥१

अभ्यासकृतसंवर्म-कर्मत्रयविभूषणा ।
लक्ष्मीर्लक्ष्मीकृतं देह-माधत्ते **लक्ष्मणा** कला ॥९९॥ ६

मनो मँहापद्मवने निवेश्य निरुद्धय नाडीपवनं सशब्दम् ।
निःसारयेदिन्द्रियवर्त्मना यत् कर्मेदमाहुः **प्रतिसारणा**रव्यम् ॥१००॥ ७

मध्ये तोयस्य वज्रासननिविडवपुर्ब्रह्मरन्ध्रे निरुध्य
स्वस्वान्तं नासिकान्तद्वयमुपरि दधत् कूर्परद्वन्द्वमुच्चैः ।
कृत्वा किञ्चित् प्रकोष्ठौ श्रवणविवरयोः सम्पुटीकृत्य पाणि-
द्वैतं न्यस्येत मूर्धि स्फुटमिदमुदितं कर्म **मत्सी**ति नाम्ना ॥१०१॥ ८

[६]चक्रे क्रोधानलस्य प्रतिनियतमनःसङ्गतिः पादगुल्फा
चान्योन्यं गाढरूढोत्कटकवपुरुपश्लिष्य पाणिद्वयेन ।
उच्चैर्वेगप्रयोगादुपरि परिपतन्नीरधाराभिसारा-
दुद्यन्मण्डूकलीलां कलयति तदिदं कर्म **मण्डूक**संज्ञम् ॥१०२॥ ९

कर्मभिस्त्रिभिरुद्दाम-धामश्रियमधिश्रिता ।
वपुषः पोषमाधत्ते विस्पष्टं **पुष्टिनी** कला ॥१०३॥ १०

पिङ्गलामथ च दक्षिणमङ्गं पीडयन्नयति वातमिडायाम् ।
सक्तशक्तिलयधामनि[७] चित्ते **शक्तिकर्म** तदिदं निगदन्ति ॥१०४॥ ११

---

१. घण्टिकायां ललनाचक्रोपरि १ पञ्चमम् ॥ २. भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रोपरि पञ्चदशम् । ३. आज्ञाचक्रोपरि षड्रसविश्रामः पञ्चमम् ॥ ४. आज्ञाचक्रोपरि एकादशम् । ५. आज्ञाचक्रोपरि द्वादशम् । ६. आज्ञाचक्रोपरि एकविंशतितमम् । ७. आज्ञाचक्रोपरि अष्टाविंशतिमम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्त्र-घ्राण-प्राणमाकृष्य तेन स्थौनं भित्त्वा ब्रह्म-शौरीश्वराणाम् ।
स्थूलाः सूक्ष्मा नाडिकाः पूरयेद् यद् विज्ञातव्यं कर्म तत् **पूरकारव्यम्** ॥१०५॥१२

अन्तर्जलं स्थिततनुर्नयनद्वयेन संयोज्य सम्पुटितमंह्रिसरोजयुग्मम् ।
कुर्वीत [१]पूर्णगिरिपीठगतं मनो यत् तत् कर्म **पूर्णगिरि**संज्ञमुदाहरन्ति ॥१०६॥१३॥१३

कर्मद्वयकृतोल्लास-चिराभ्यासवशंवदा ।
कामं कामोदयच्छेदौ कुरुते **कामिनी** कला ॥१०७॥१४

लिङ्गद्वाराल्लम्बिकां चुम्बमाने चित्ते गुल्फस्योपरि न्यस्य शिश्नम् ।
यत्सङ्कोचं मन्दमन्दं नयेत् तत् **सङ्कोचीति** स्यादिदं कर्म तस्मात् ॥१०८॥१५

आकण्ठं नीरपूरान्तररचिततनुः पद्मबन्धासनस्थ-[२]
श्छायायामह्नि नक्तं शशधरकिरणक्षालितं क्षोणिपीठे ।
स्वान्ते विश्रान्तिमञ्चत्यचलवनभुवि क्षीरखण्डादि भुङ्क्ते
कर्मैतद् **बिन्दुमालिन्य**भिहतमुदयद् बीजबिन्दुप्रपातम् ॥१०९॥१६

आधिव्याधिपरित्रस्त-प्राणित्राणाय जाग्रती ।
आश्वासं जनयेत् कर्म-त्रया**दाश्वासिनी** कला ॥११०॥१७

पवनं मानसे तच्च सुषुम्णाधारमण्डले ।
सम्बन्ध्य (ध्य?)बन्धयेत् श्वासं **श्वासबन्धनकर्म** तत् ॥१११॥१८

नवविवरविरोधस्वास्थ्यमास्थाय काये
मनसि रजनिजानेर्बिम्बमालम्बमाने ।
सितमपि किल रेतः श्वेतमाबन्धयेद् यत्
तदुदितमिह कर्म **श्वेतबन्धा**भिधानम् ॥११२॥१९

आकाशान्तः प्रविशति गुरुद्वारतो मानसाख्यं
चक्रं भित्त्वा मनसि दशमद्वारभेदं च कृत्वा ।
मन्दं मन्दं रचयतितरां कुञ्चनं पायुवायो-
राकुञ्चीति स्फुरति तदिदं कर्म शर्मैकहेतुः ॥११३॥२०

चिराभ्यासवशीभूत-कर्मत्रितयवर्मिता ।
चित्तमानन्दसन्दोहे मोहयेन्**मोहिनी** कला ॥११४॥२१

---

१. आज्ञाउपरि ब्रह्मस्थानम् । अनाहतोपरि विष्णुस्थानम् । २. ललनाचक्रोपरि सप्तमम् । ३. बद्धपद्मासनस्थः । ४. सोमचक्रोपरि प्रथमम् । ५. आज्ञाचक्रोपरि नवमम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]चक्रे ध्वनेश्चरति चेतसि योगपट्टावष्टम्भितश्चिबुकचुम्बितजानुमध्या ।
नैर्मल्यतः स्वनयनादि निरञ्जयेद् यत्, कर्म स्मृतं गतमदैरिदमञ्जनीति ॥११५॥२२

लिङ्गद्वारान्तरालादुपनयति मनो मूलकन्दे[2]ऽथ तस्मा-
न्नक्षत्रोद्दामदीप्तिर्गमयति यशया वामनेत्राम्बुजान्तम् ।
चक्षुर्मार्गाच्च सव्याद्विरचयतितरां मूलकन्दे पुनस्तत्
कर्माऽलिन्दीति योगावसथपृथुतरालिन्दतुल्यं तदाहुः ॥११६॥२३

कर्मेदमेव मनसि प्रस्थिते गजजिह्वया ।
कालिन्दी-गङ्गयोः सङ्गात् **कालिन्दीकर्म** कीर्त्यते ॥११७॥२४

चिराभ्यासवशीभूतै-रापूर्णा कर्मभिस्त्रिभिः ।
पुंसां दिशति सन्तोष-पोषं **सन्तोषिणी** कला ॥११८॥२५

आकुञ्चन् पायु-शिश्ने मनसि च नितरामुन्मनी[3]चक्रलीने
कापालद्वाररन्ध्रस्थगनपरिचयप्रह्वजिह्वाकवाटः ।
अन्तर्देहं समीरे विलयमुपगते शश्वदभ्यासयोगात्
काष्ठीकर्मेदमुच्चै रचयति वपुषः काष्ठकाष्ठाविधायि ॥११९॥२६

[4]बिन्दुस्थाननिकेतनातिथिमना ग्रीवान्तकान्तस्थिति-
र्व्यातन्वन् चिबुकं स्वकण्ठमभितो नाड्याविडा-पिङ्गले ।
अङ्गुष्ठद्वयपीडनान्निविडयन् मूर्च्छान्धकारान्तरे
यत् पीयूषरसं पिबेत् **तदमरीकर्मे**दमावेदितम् ॥१२०॥२७

रून्धन् रन्ध्रव्रजमनुसरन्मानसेनाम्बुमुद्रां
कृत्वा वज्रासननिबिडतां चन्द्रबिम्बात् पराचीम् ।
निश्चयोतन्ती यदमृतकलां चारयेत् स्वे समन्ता-
दन्तोच्छित्यै तदिदमवदन् **खेचरीकर्म** सन्तः ॥१२१॥२८॥७

आकल्पान्तमियं कर्म-त्रयसंवृत्तवर्त्तना ।
शरीरिणां शरीराणि वर्त्तयेद् **वर्त्तनी** कला ॥१२२॥२९

पुरुषधामवशंवदमानसो घटपटाद्यपि हि स्वतया स्मरन् ।
स्वकुल एव भवत्ययमीश्वर-स्तदिह कर्म **कुलीश्वर**मूचिरे ॥१२३॥३०

१. आधारोपरि । २. आधारादधः । ३. सोमचक्रोपरि । ४. आज्ञाउपरि ७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्रस्थानस्थचेतास्तुहिनकरकलाकान्तया तिग्मलासः
पुंसः सम्बन्धबन्धं विरचयति ततस्तद्विमर्दोत्थबीजं[1] ।
नासारन्ध्रादिमार्गाज्जनयति मनसा भ्रष्टमग्रेसरेण
भ्रष्टीकर्मेदमुक्तं रतसमरसुखास्वादसंवादहेतुः ॥१२४॥३१

यन्त्रं पिण्डप्रमाणं विरचयति ततो मध्यदण्डे विलङ्घ्य
स्वं देहं नाभिदेशात् क्षितिनिमितमुखः कुञ्चयन् पाणिपादम् ।
जिह्वाग्रं लम्बिकायां विदधदधिवसंश्चेतसा बुद्धि[2]तत्त्वं
गर्भावस्थाभिधानं जनयति तदिदं **कर्म** शून्यान्तरात्मा ॥१२५॥३२॥८

तन्वती देहिनां देहं कुमुदामोदमेदुरम् ।
धत्ते कर्मद्वयाभ्यासान्मुदं **कुमुदिनी** कला ॥१२६॥३३

लिङ्गद्वारान्मानसे स्वे सुषुम्णामार्गेणोच्चैश्चुम्बति श्वेतभानुः ।
ऊर्ध्वं याति **स्त्री**प्रसङ्गेऽपि रेतः **स्यादुद्यातीकर्म** शर्मप्रदं तत् ॥१२७॥३४

आकुञ्चन् गुदमुच्चकैर्विरचयन् जङ्घाद्वयं कन्धरा-
बन्धस्योपरिचारि किं च विदधन्मूर्द्धानमूर्ध्वस्थितम् ।
यज्जा[3]लन्धरपीठलोठितमनाः सोल्लासमासूत्रयेत्
तज्जालन्धरकर्म कर्मकुशलाः सम्यक् समाचक्षते ॥१२८॥३५॥९

विकाशश्रियमश्नान्तं लम्भिताः कर्मभिस्त्रिभिः ।
धत्ते देहप्रभोल्लास-हासं **प्रहासिनी** कला ॥१२९॥३६

तन्वन् नवद्वारनिरोधपूर्वं विश्रा[4]मँचक्रे पवनस्य चेतः ।
अन्दोलयेदिन्दुपतङ्गबिम्बे विदुस्तदन्दोलनकर्म कार्माः ॥१३०॥ ३७

चेतः कृत्वा विस्मृतेश्चक्रेचारि स्वैरं नाडीस्ताडयन् मुष्कभाजः ।
उद्यल्लिङ्गं स्वास्थ्यमास्थापयेद् यत् **षष्ठीकर्म** रव्यापितं तन्मुनीन्द्रैः ॥१३१॥३८

गतवति चेतसि पश्चिमलिङ्गं विवृतमुखः करपीडितनाभिः ।
जनयति नाभिसरोजविकाशं **कमलविकाशनकर्म** तदाहुः ॥१३२॥३९ ॥१०

---

१. **०विमर्दोत्थवीर्यम्** । २. ललनाचक्रोपरि २ । ३. आज्ञाउपरि ४ । ४. सोमचक्रोपरि ६ । ५. आज्ञा उपरि २० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मद्वयकृतोपास्तिरमृतास्वादसोदरा[1] ।
आह्लादसम्पदं धत्ते सेयमाह्लादिनी कला ॥१३३॥४०

निर्वातदेशमधिगम्य विधाय लिङ्ग-मूर्ध्वं ततोऽस्य विवरान्तरमीक्षमाणः ।
पीठे मनो नयति यत् किल कामरूपे[2] तत् कामरूपमिति कर्म वितीर्णरूपम् ॥१३४॥४१

उत्तानीकृत्य वामं करतलमुपरि न्यस्य [3]पार्ष्णिः शरीरं
तस्मिन्नारोप्य तस्मादपरमपि शिरः शेखरत्वेन कृत्वा ।
सार्द्धं देहेन चेतो भ्रमयति मणिपूराख्यं[4]चक्रस्य पार्श्वे
प्रोद्यच्छक्त्या समन्तान्नयति च विलयं कर्म तच्छक्तिबन्धम् ॥ १३५॥४२॥११

दिशती सोमतां कर्म-द्वयनाटितपाटवा ।
दत्ते कारुण्यतारुण्यं कलेयं करुणावती ॥१३६॥४३

ब्रह्मस्थानाधिष्ठितस्वान्तवृत्ति-र्लिङ्गस्यान्तर्धातुजं वक्त्रनालम् ।
निक्षिप्योर्ध्वं तोयमाकर्षयेद् यत् तत् कर्म स्याद् वक्त्रनालाभिधानम् ॥१३७॥४४

स्वान्तं [6]सारस्वतान्तर्विदधदुपघनेनोत्कटीभूय जानु-[7]
द्वन्द्वोर्ध्वं कूर्परान्तर्द्वयमुपरचयन् सम्पुटीभूतपाणिः ।
वक्त्रं सम्मील्य जिह्वां नियमयतितरां राजदन्तान्तराले
कर्मैतत् सम्पुटी स्याद् विधु-रवियुगलीसम्पुटे साम्यहेतुः ॥१३८॥४५॥१२

कर्मद्वयसमुल्लासि-रसपीयूषसारणिः ।
आप्यायते नृणामङ्ग-मियमाप्यायिनी कला ॥१३९॥ ४६

पद्मासनीभूय मनः सुषुम्णा-मार्गे वितन्वत्(द्) रसनाग्रशून्या ।
यल्लम्बिका चुम्बति मन्दमन्दं तल्लम्बिकाकर्म वदन्ति सन्तः ॥१४०॥ ४७

आक्रान्तकेवलिलयस्थितिधाम्नि चित्ते नासान्तवक्त्रविवरैः परमाणुरूपम् ।
आकृष्य यद् गगनमापिबति प्रकामं प्रोक्तं बुधैस्तदिदमम्बरपानकर्म ॥१४१॥४८॥१३

कर्मत्रयभवद्भूति-परमानन्दसम्पदः ।
अलंकर्मीणतामेति विकाशाय विकाशिनी ॥१४२॥ ४९

---

१. ०श्वाससोदरा । २. आज्ञाउपरि ४ । ३. पार्श्वे । ४. नाभौ । ५. आज्ञाउपरि ।
६. ललनाचक्रसमीपे । ७. विदधदुपघनेऽग्र० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वं (स्व)च्छन्दसुन्दरवपुर्मनसा सितांशु-बिम्बं स्पृशन् पिबति नासिकया समीरम् ।
[1]सूर्यं स्पृशन्नथ विरेचयते तदेत-च्चेतो विघूर्णयति **घोलनसंज्ञकर्म** ॥१४३॥५०

आकाशाद् [2]ब्रह्मरन्ध्रं प्रविशति भजते वाममार्गेण पादौ ।
सव्यान्मार्गात् सुषुम्णापथमथ वितथीभावबन्धं समेत्य ।
ब्रह्मग्रन्थि[3]प्रबन्धे विलयमविकलं याति चेतस्तदेतत्
कर्म प्रावीण्यपुण्यैर्मुनिभिरभिहितं **ब्रह्मभेदा**भिधानम् ॥१४४॥५१

सावष्टम्भाङ्गयष्टिं स्फुटनिमितमना नादं[4]चक्रे निरुध्य
घ्राणं मध्याङ्गुलीभ्यां श्रुतिविवरपथस्थापिताङ्गुष्टयुग्मः ।
निःशेषद्वाररोधे ध्रुवमुपरि शिरोऽभ्यन्तरेऽनाहतं यत्(द्)
घण्टारावं विधत्ते तदिदमभिह(हि)तं कर्म **घण्टारवा**ख्यम् ॥१४५॥ ५२ ॥१४

वपुर्वचनचेतस्सु कर्मत्रितयदीपिता ।
तुल्यमुल्लासयत्येव सोमतां **सोमिनी** कला ॥१४६॥५३

कुर्वन् कदम्बगोलान्तः स्वान्तमन्तर्मुखेन्द्रियः ।
बन्धयेत्तियडास्तिस्र-**स्तिडया(यडा)बन्धकर्म** तत् ॥१४७॥ ५४

स्थास्नूकृत्य मनस्तृतीयतियडाचक्रान्तसञ्चारितं
पर्यङ्कासनबन्धबन्धुरवपुर्द्वाराणि रुद्ध्वाऽभितः ।
उत्तानो दृढरज्जुबन्धनविधिं नाभिप्रदेशे दिशेद्
धूनोत्युद्धततापसम्पदमिदं **कर्माऽवधून्या**ह्वयम् ॥१४८॥ ५५

चेतः कृत्वा यदमृतकलां[5]चक्रविक्रान्तमन्तः
स्वेच्छासीनः सरलितपदः किञ्चिदामीलितास्यः ।
स्पृष्ट्वा दन्तान्निजरसनया सूत्कृतैरत्ति वातं
कर्म प्रोक्तं भुजगजनितं तद् **भुजङ्गी**ति नाम्ना ॥१४९॥ ५६

कर्मद्वयोज्ज्वलज्योति-र्जराविजयकारणम् ।
अमृतत्वं शरीरेषु दद्यादमृतनी कला ॥१५०॥ ५७

---

१. आधारे । २. आज्ञाउपरि । ३. स्वाधिष्ठोपरि । ४. आज्ञाउपरि । ५. आज्ञाउपरि । ६. आज्ञाउपरि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]यत्रोत्तरध्रुवमना निजनासिकान्त-र्दत्तेक्षणः क्षितितलास्थितहस्तयुग्मः ।
प्राणेन वायस इवोल्लिखति क्षमायां तद् **वायसी**ति विगदं निगदन्ति कर्म ॥१५१॥५८

आनीते भ्रमरस्य चक्रमभितः स्वान्ते गुडादीनदन्
निर्वाते करभासनः प्रगुणयन्नूर्वोर्ललाटस्थितिम् ।
ध्यानेन भ्रमरीविभास्वरवपुर्जायेत शीतद्युतिः
कर्मैतद् **भ्रमरी**तिसंज्ञमतुलप्रज्ञैः परिज्ञापितम् ॥१५२॥५९ ॥१६

दीपितः कर्मणोमेवं द्विचत्वारिंशताऽनया ।
सद्यो वपुषि पीयूषं निषिञ्चति सितद्युतिः ॥१५३॥ ६०

* (टि. षोडशसु कलासु कर्मसंख्या - ३, ३, ३, २, ३, ३, ३, ३, २, ३, २, २, २, ३, ३, २ = ४२)

इति **श्रीसमुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चया**भिधाने श्रीयोगशास्त्रे **चन्द्र(कर्म)** प्रकरणं पञ्चमं समाप्तम् ।

इहांशुमान् [2]स्वान्तनभोगणान्त-र्विद्योतते द्वादशभिः कलाभिः ।
एकैकशश्चात्र कलाविलास-मुल्लासयेत् कर्मपरम्परेयम् ॥१॥ १५४

पवनाख्यां कलामत्र यथार्थप्रथिताभिधाम् ।
अमूनि त्रीणि कर्माणि दीपयन्ति समन्ततः ॥२॥ १५५

मनसि चरति गुप्तैवातचक्रे [4]पवननिरोधविधानबद्धबुद्धिः ।
जरयति [5]पवनं रसं च यस्मा-दिदमिति **जारणकर्म** कीर्तयन्ति ॥३॥ १५६

यद् भूत्वोत्कटकवपुः स्थिरो विधाय स्वस्वान्तं ननु विचरिष्णु विष्णुं[6]भाण्डे[7] ।
आकुञ्चत्यथ च विमुञ्चते च पायुं **गन्धारी** गुरुमलगन्धरोधनात्तत् ॥४॥ १५७

घनरसाऽन्नरसप्रसरार्स्पदे गतमनाः पवनः किल पिङ्गलाम् ।
नयति बाढमिडां परिपीडयन् शिवनिदानतया **शिवकर्म** तत् ॥५॥ १५८ ।१

१. सोमचक्रोपरि । २. **देह** । ३. घात । ४. आधाराधः । ५. **पतनं** (?) । ६. **विष्ट** । ७. आधारे । ८. स्वाधिष्ठानोपरि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ देहमहीरोहद्-गुरुतररसगहनदहनरुचितरुचिः ।
उद्दीप्यते समन्तात् कर्मत्रितयेन **दहनकला** ॥६॥ १५९

चेतः कृत्वा शक्ति[1]चक्रे निलीनं पादाङ्गुष्ठौ पृष्टगाभ्यां कराभ्याम् ।
गृह्णात्यन्योन्यस्य वज्रासनस्थ-स्तद्विज्ञेयं कर्म **वज्रासनाख्यम्** ॥७॥ १६०

स्वान्तं नीत्वा स्थिरतरवपु[2]र्मण्डले चण्डभानो-
र्मन्थित्वा तं दृढतरमरुद्दण्डमन्थानकेन ।
तस्माज्जातं शिखिकणगणं निक्षिपेन्मूलकै[3]न्दे
ख्यातं नाडीगतरसततेर्मारणा**न्मारणं** तत् ॥८॥ १६१॥

[4]सानन्दं देहकन्दो[5]न्तरनिमितमना वज्र[6]बन्धासनस्थो
धृत्वाऽन्योन्यं कफोणौ निजभुजयुगलं मौलदेशे निवेश्य ।
पार्श्वस्थं चाग्रतश्च क्षितितलमलकान्तेन चुम्बन् क्रमेण
प्राणादीन् धीरबुद्धिर्दमयति **दमनीकर्म** तद्वर्णयन्ति ॥९॥ १६२

अथा**ऽरुणकला**यास्तु कान्त्युत्साहकृतः कृती ।
प्रपञ्चं पञ्चभिः कुर्यात् कर्मभिर्ज्ञातमर्मभिः ॥१०॥ १६३

[7]देवीगुहागर्भमनाः शरीर-मधोमुखं दीर्घतरं विधाय ।
कुर्यात् करद्वन्द्वनिवेशितं तद् **ढिंकीति** ढिंकाकृतिकारि कर्म ॥११॥ १६४

जन्मस्थाननिवेशितं विरचयन् षण्णां रसा[8]नां मनः
कुर्वन्नुत्कटिकासनं गुदगतां मध्याङ्गुलीं लालयन् ।
नैर्मल्यं विदधाति कोष्टकुहरक्रोडस्य हृत्वा मलं
योगीन्द्रास्तदुदाहरन्ति **कुहरीकर्मो**रुधर्मोद्धुरम् ॥१२॥ १६५

मनसि वसति चक्रे सूर्यरज्यतकला[9]याः
कलितविवररोधः सज्जवज्रासनाङ्गः ।
ज्वलदनिलविलोलां शक्तिमुच्छालयेद् यत्
तदिति भवति **शक्त्युच्छालनं** नाम कर्म ॥१३॥ १६६

---

१. आधाराधः । २. आधाराधः । ३. आधारे । ४. **आनन्दं** । ५. आधाराध(:) । ६. **पद्मबन्धा०** । ७. आधाराधः । ८. स्वाधिष्ठानोपरि । ९. आधाराधः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नादोदयस्थानकदत्तचित्तो वज्रासनान्तः कृतपाणियुग्मः ।
मयूरवद् व्योमनि नृत्यतीव **मयूरकर्म** प्रथितं ततस्तत् ॥१६७॥

मध्येमध्यमवोक्पदं[1] कृतपदं चेतः समासूत्रयन्
रुन्धानश्च नवापि देहविवराण्युद्यन्मरुन्मारणात् ।
निर्लक्ष्येक्षणमेकमंह्रिकमलं जानौ समारोपयन्
मूर्ध्न्यन्यच्च भवेच्च भैरव इव स्याद् **भैरवं** कर्म तत् ॥१५॥ १६८ ।३

अथ धातुरससमीरेन्धननिधनविधानबद्धसंरम्भा ।
कर्मत्रितयाभ्यासात्(द्) **ज्वलनकला** ज्वलति देहान्तः ॥१६॥ १६९

कृत्वा पार्ष्णिं पायुशिश्नान्तराले बद्ध्वा यत्नादुड्डियाणाख्यबन्धनम् ।
भानोश्चण्डे[2] मण्डले लीनचित्त-स्तच्चण्डालीकर्म[3] निर्मीयते स्म ॥१७॥ १७०

दृढं कृत्वा वज्रासनमनुगुदान्तेन कलिते
कलोत्पत्तिस्थानं[4] मनसि विधुवन् गाढमभितः ।
ज्वलज्ज्वालामालाकुलमखिलमङ्गं वितनुते
कृती **ज्वालामालिन्युदितमिति** कर्म स्फुटमिदम् ॥१८॥ १७१

यत्रासूत्रितमूत्रभाण्डकुहरक्रोडाधिवासं[5] मनः
कृत्वा किं च समुन्मिषन्निजवपुर्वज्रासनोज्जागरम् ।
गाढं पाणितलेन कोमलतरग्राव्णाऽथवा घर्षये-
द्वज्रीकर्म तदत्र वज्रसमतामङ्गस्य धत्ते क्रमात् ॥१९॥ १७२

अथ संजायते प्रौढं रसशोषैककारणम् ।
शिखिप्रभाप्रभोल्लासो मांसलः कर्मभिस्त्रिभिः ॥२०॥ १७३

वज्रासनस्थितवपुः स्थिरधीः स्वचित्त-मारोप्य रेचकसमीरणं[6] जन्मचक्रे ।
स्वान्तेन रेचयति नाडिगतं समीरं तत् कर्म **रेचक**मिति प्रतिपत्तिमेति ॥२१॥१७४

ध्यानस्थानं[7] निधानतागतमना विस्तार्य तिर्यक्कृता-
[8]वन्योन्यं[9] चरणौ विधाय विवृतं पाणिद्वयेनाऽऽननम् ।

---

१. आधारः । २. मणिपूरकोपरि । ३. आधाराधः । ४. स्वाधिष्ठानोपरि । ५. आधारोपरि । ६. आधारोपरि । ७. अनाहतोपरि । ८. ०वत्यन्तं । ९. विधृतं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुद्रग्रन्थिमथ श्लथत्वविधिना यच्छोटयत्यादरात्(द्)
ग्रन्थिच्छोटनकर्म निर्मलधियस्तद् बोधयांचक्रिरे ॥२२॥ १७५

उत्तानो भूमिशायी कृतविततकरः शीर्षपार्श्वद्वयेन
स्तम्भीभूतांह्रिपाणिर्गगनगवपुषा मण्डपत्वं दधानः ।
कुर्यात् कम्पं स्रसानामुपहितहृदयो दक्षिणस्य[1] ध्रुवस्य
स्यादुत्क्षेपाय **नाभीजलरुहिकमलोल्लञ्छनं** नाम कर्म ॥२३॥ १७६ ।५

अथ कर्मत्रयनिर्म्माण-निर्मलीभूतजाज्वलज्ज्योतिः ।
शीतार्त्तिस्फूर्तिहरा देहान्तस्तपति **तपनकला** ॥२४॥ १७७

उत्तानः कृतगुणतत्त्वबुद्धिचेता बिभ्राणः सरलितपादयोः कराभ्याम् ।
अङ्गुष्ठौ धनुरिव ताडयेत्तनुं यत् **कोदण्डं** तदिदमुदाहरन्ति कर्म ॥२५॥ १७८
हुंकारचक्रमनुचेतसि याति रुद्ध्वा रन्ध्राणि पाणियुगलं भुवि संनिवेश्य ।
चक्रभ्रमं भ्रमति विभ्रमबन्ध्यबुद्धि-**स्तच्चक्रकर्म** कृतकर्मभिरभ्यधायि ॥२६॥ १७९

आधायोत्कटिकासनं नियमयन् हृत्कण्टकान्तर्मनो
लोहेभ्योऽमृतवल्लितोऽथ जनितां कृत्वा शलाकां शुभाम् ।
विन्यस्यन् वदनाम्बुजे क्रमवशाल्लिङ्गेन निःसारये-
दित्थं **शोधनकर्म** कोष्टकुहरं यत्नेन संशोधयेत् ॥२७॥ १८० ।६

अथान्तर्जठरं जाग्रद्वह्निज्वालावलीमयी ।
पञ्चभिः कर्मभिः सेयं दीप्यते **दीपनी** कला ॥२८॥ १८१

आनन्दमन्दिरनिरन्तरचित्तवृत्ति-र्यद्दक्षिणोत्तरविवर्त्तितकुक्षिरन्तः ।
उन्मीलयेन्नकुलवत् कमलासनेन निर्मान्ति कर्म **नकुलीति** तदात्मवन्तः ॥२९॥१८२

उच्चैर्वज्रासनमनुभवन्नङ्गुलानां चतुष्के
नामेश्चान्तः सरलितवलीबन्धमाधाय धीरः ।
चेतोवृत्तिं नयति नितरामुड्डियाणाख्यपीठं
प्राणानेतद् द्रढयतितरा**मुड्डियाणाख्यकर्म** ॥३०॥ १८३

---

१. आधारः, प्रथमम् । २. मणिपूरकोपरि । ३. अनाहत । ४. अनाहताधः । ५. अनाहतोपरि । ६. **नाभेश्चाधः** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकटपवनैचक्राक्रान्तचेताः शरीरं, सरलमचलमुच्चैःकृत्य नासापुटाभ्याम् ।
रचयति मरुतोऽन्योन्यस्य रोधं ग्रहं च स्फुटमिति **धमनी**ति प्रोच्यते कर्म कामैः
॥३१॥ १८४

क्ष्मामण्डले वपुरधोमुखमारचय्य सङ्कोच्य कूर्म इव गात्रमशेषतोऽपि ।
यत् कूर्मचक्रमनुविक्रमयेन्मनः स्वं तत् **कूर्मकर्म** निपुणाः परिकीर्तयन्ति ॥३२॥१८५

अस्थ्युत्पत्तिस्थानकस्थायिचेता वेतालश्रीसोदरेणोदरेण ।
भूत्वा यत्नादुत्कटः कर्म कुर्या-**दुच्छाली** स्यात् तद् रसोच्छालनेन ॥३३॥१८६।७

अथ कर्मत्रयाभ्यास-मार्जनोपार्जनद्युतिः ।
तन्वती देहविस्फूर्त्तिं द्योतते **द्योतनी** कला ॥३४॥ १८७

स्पृशति मनसि हंसस्थानकं कुञ्चयित्वा
चरणयुगलमूर्ध्वीकृत्य भून्यस्तमौलिः ।
करतलयुगलेनोत्तम्भितः कुण्डलेन
भ्रमति तदिदमाहुः **कुण्डलीकर्म** सन्तः ॥३५॥१८८

भूताभ्यन्तरवारिचीरकटकं कृत्वा पदाङ्गुष्टका-
वूर्ध्वाकुञ्चिकरद्वयेन पृथिवीमुद्रामनाः कर्षयन् ।
प्रद्योताग्नितपद्विधुभ्रमरसं येनोर्ध्वशक्तौ नयेत्
पातं **शक्तिनिपातना**भिधमतः कर्मेदमाचक्षते ॥३६॥ १८९

चैतन्यचक्रान्तरसंचरिष्णु स्वान्तं वितन्वन् गरुडासनस्थः ।
आलोडयेत् पक्षनिभौ करौ यत् प्रचक्षते तद् **गरुडी**ति कर्म ॥३७॥ १९० ।८

अथ कर्मचतुष्केन रससाम्यं वितन्वती ।
विधत्ते देहिनां देहं सुप्रभं **सुप्रभा** कला ॥३८॥ १९१

चेतसि पश्यन्तीपदगामि-न्यूर्ध्वशरीरः पृष्ठगतेन ।
पाणियुगेनाऽऽक्रामति पार्ष्णी **पश्चिमगात्री** कर्म तदाहुः ॥३९॥ १९२

ब्रह्मग्रन्थिग्रन्थिलस्वान्तवृत्तेः क्षामं कामं मध्यदेशं विधाय ।
यद्दीर्घाहिश्शालयेल्लिङ्गदण्डी-**मेतद्दण्डी**चालनं कर्म तत् स्यात् ॥४०॥ १९३

१. स्वाधिष्ठानोपरि । २. आधाराधः । ३. स्वाधिष्ठानोपरि । ४. मणिपूरकोपरि । ५. मणिपूरकोपरि । ६. ०ग्निविधुहृतामृतरसं प्र० । ७. आधारोपरि । ८. आधाराधः । ९. स्वाधिष्ठानोपरि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]रोमोत्पत्तिविधानधामनि मनः कृत्वा रसज्ञामधो-
व्यावृत्तोत्कटिकः सुधारसकलामुन्मीलयन्तीं मुहुः ।
ध्यात्वा रोमसु सर्वतो रमयति द्वाराणि रुद्ध्वा दृढं
रोमश्यामलताविधायि **रमणीकर्मेदमावेदितम्** ॥४१॥१८४

[२]चेतसि श्रयति कुम्भकचक्रं नाडिकासु निबिडीकृतवातः ।
कुम्भवत् तरति यज्जलमध्ये तद् वदन्ति किल **कुम्भककर्म** ॥४२॥ १९५।९

अथ कर्मचतुष्केन जनितोद्दामदीधितिः ।
मलधातुरसादीनि शोषयेच्छोषणी कला ॥४३॥ १९६

[३]मूलकन्दहृदयो गुदरन्ध्रं पार्ष्णिना दृढतरं परिपीड्य ।
मूलमूर्ध्वमिह तानयतीत्थं **मूलतान**मिह कर्म तदुक्तम् ॥ ४४ ॥ १९७

चक्रं हृदि श्रयति कुण्डलिनी[४]मुखस्थ - मुत्तम्भितं निजशरीरमधो वितन्वन् ।
नासाग्रभागमनुवर्द्धयते रसज्ञां तज्ज्ञापयन्ति **रसनापरिवृद्धिकर्म** ॥ ४५ ॥ १९८

चेतः कुर्वन्नादिरैक्तस्य चक्रे ध्यायन् देहं शोणमुद्रासनस्थः ।
लिम्पेद् गात्रं मूत्रविष्टादिना यत् **तन्मातङ्गीकर्म** विस्पष्टमिष्टम् ॥ ४६ ॥ १९९

सिद्धि[६]ज्ञानगुहागृहग्रहमनाः सव्येतरे कूपरे
वामस्योपरिगे दधत् करतलं वामं पुनर्दक्षिणे ।
दत्त्वा मूर्धनि चालयंस्तमभितः सञ्जातवज्रासनो
मेरुं कम्पयतीति कर्म गदितं **तन्मेरुकम्पा**भिधम् ॥ ४७ ॥ २००

अथानया नयाभ्यस्तैर्दीप्तया कर्मभिस्त्रिभिः ।
सुवर्णप्रभतामेति **सुवर्णप्रभया** वपुः ॥ ४८ ॥ २०१

यच्चेतसि क्रीडति कुण्ड[७]लिन्यां कुब्जं शरीरं विरचय्य किञ्चित् ।
रसज्ञया संस्पृशति स्वलिङ्गं तत् **कुब्जिका**ख्यातिमुपैति कर्म ॥ ४९ ॥ २०२

आलिङ्ग्य लिङ्गमभितो मनसा स्वयंभु-[८]वक्त्रं निमील्य चिबुकं हृदि संनिवेश्य ।
सुप्तं श्ववद् वितनुते यदघोरनाद - मुद्दामबुद्धिगदितं **तदघोरकर्म** ॥ ५० ॥ २०३

१. उड्डियाणोपरि । २. मणिपूरकोपरि । ३. आधार । ४. आधाराधो द्वितीयम् । ५. आधारे । ६. मणिपूरकोपरि । ७. आधाराधः । ८. आधाराधः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवेशोंस्पदसम्पदं श्रितवति स्वान्ते वितत्योत्कटं
देहं भूनिहितेऽभितः करतले नाभिं समालोडयन् ।
अन्योन्यं निजनासिकाविवरयोः शुक्रं पिबेदुद्वमेत्
कर्मैतत् **करसुन्दरी**ति करयोः सौन्दर्ययोगादभूत् । । ५१ ॥ २०४
कर्मत्रयघनाभ्यास - मांसलीभूतदीधितिः ।
कान्तं देहमसन्देहं धत्ते **विद्युत्प्रभा** कला ॥ ५२ ॥ २०५
यद्विष्णुवेश्महृदयः कमलासनस्थो-ऽवष्टम्भभाक् (ग्) विकटखाट्कृतिना मुखेन ।
ज्योतिः प्रकाशयति कुञ्चिततूलचक्र - स्तज्ज्योतिषामु**दयकर्म** समादिशन्ति
॥५३॥२०६
दधति मनसि चक्रे [३]पाकवह्नेर्निवासं गुदगतनलिकान्तेनोर्ध्वमाकृष्य तोयम् ।
विसृजति च सयत्नं कोष्टशुद्धिं विधाय स्फुटमिद**मुदरी**ति ख्यातिमायाति कर्म
॥५४॥२०७
चेतोमतिं प्रतिनियम्य वराङ्गैचक्रे लिङ्गेन जाठरसमीरमधो विमुञ्चन् ।
तत् तानयेन्मृदुलपार्ष्णिकरद्वयेन **लिङ्गप्रसारण**मिदं निगदन्ति कर्म ॥ ५५ ॥ २०८
विशेषो यत्र न प्रोक्त - स्तत्र पद्मासनं मतम् ।
यथास्थानं नियोज्यं च लिङ्गद्वारेण मानसम् ॥ ५६ ॥ २०९
*द्वाचत्वारिंशताऽमूभिः कर्मभिः कृतशर्मभिः ।
मार्त्तण्डमण्डलज्योति - र्द्योतते जठरान्तरे ॥ ५७ ॥ २१०

इति *श्री **समुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चयाभि**धाने श्रीयोगशास्त्रे
सूर्यकर्मप्रकरणं षष्टं समाप्तम् ॥

* (द्वादशसु कलासु कर्मसंख्या - ३,३,५,३,३,३,५,३,४,४,३,३ = ४२)

क्षोणी-जला-ऽनल-मरुद् -गगनाभिधानि
भूतानि पञ्च रचयन्ति शरीरमेतत् ।
तुल्यानि तान्युपचयं परिपञ्चयन्ति
न्यूनाधिकान्यपचयं पुनरानयन्ति ॥ १ ॥ २११

१. अनाहतोपरि । २. अनाहतोपरि । ३. स्वाधिष्ठानोपरि । ४. आधाराधः । ५. **सूर्योलिकर्म. प्रत्यं०** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋतूनामानुगुण्येन प्रायशः सर्वधातुषु ।
क्षय-वृद्धी ततः कार्या ऋतुभावविभावना ॥ २ ॥ २१२

चैत्रे प्रधानं जलमामनन्ति समीरणं गौणमुदाहरन्ति ।
वैशाखमासे जलमेव मुख्यं [१]ज्येष्ठेऽम्बु मुख्यं दहनं तु गौणम् ॥ ३ ॥ २१३

आषाढमासे सलिलं प्रधानं तेजस्तु गौणं परिकीर्तयन्ति ।
तेजः पुनः श्रावणिके [२]प्रधानं, जलं तु गौणं गणयन्ति सन्तः । ४ ॥ २१४

तेजो भवेद् भाद्रपदे प्रधानं तथाऽऽश्विने वायु-जले तु गौणे ।
तत् कार्तिकेऽपि प्रथमं वदन्ति वायुं पुनर्गौणतया गृणन्ति ॥ ५ ॥ २१५

स्यान्मार्गशीर्षे पवनं प्रधानं तेजस्ततोऽनन्तरमप्रधानम् ।
पौषे पुनर्मासि वदन्ति सन्तः समीरवीरस्य धुरन्धु(न्ध)रत्वम् ॥ ६ ॥ २१६

माघे मासे मातरिश्वा प्रधानं गौणे तेजः-पाथसी तु प्रथेते ।
वल्गत्युच्चैः फाल्गुने वायुराढ्य - स्तस्मात् तोयं गौणभावं बिभर्ति ॥ ७ ॥२१७

यथैव ब्रह्माण्डं बहिरखिलमुल्लेखमयते
तथैवाऽन्तःपिण्डं सकलमिदमस्त्येव नियतम् ।
तदेवं धातूनां चयमपचयं चापि सुचिरं
विचिन्त्यौचित्येन प्रगुणयति कर्माणि मतिमान् ॥ ८ ॥ २१८

इह हि[३] तुहिनभानुः पूर्विकाभिः कलाभि -
र्जनयति धरणिश्रीपुष्टिमष्टाभिराभिः ।
तदनु च चरमाभिस्ताभिरन्तःशरीरं
भवति सलिललक्ष्मीवृद्धिसम्बन्धबन्धुः ॥ ९ ॥ २१९

षड्भिः कलाभिः प्रथमोदिताभि - र्भानोर्बृहद्भानुरुपैति वृद्धिम् ।
अन्याभिरभ्यासवशंवदाभिः स्वैरं समीरोऽभ्युदयं बिभर्ति ॥ १० ॥ २२०

ततः कर्माभ्यासाद् भवति खलु भूतेषु समता
चिरस्थायी कायः सकलगदकन्दव्यपगमः ।
शकृन्मूत्राल्पत्वं वलिपलितनिर्मूलनविधिः
प्रसत्तिः सौरभ्यं द्रुतकनककल्पा द्युतिरपि ॥ ११ ॥ २२१

१. ज्येष्ठेऽपि तद् वह्न्यनिलौ तु गौणौ - पाठः । २. प्रवेकं = पाठः । ३. इह तु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूतदोषकलुषस्य जायते मानसस्य[1] विकृतिः शुचेरपि ।
सन्निपातपतितस्य दृश्यते धीमतोऽपि विकलं हि चेष्टितम् ॥ १३ ॥ २२३

मानसे च विमलत्वमीयुषि क्षान्तिशान्तिकरुणाभिरावृतः ।
सद्विवेकसुहृदा परिस्कृ(ष्कृ)तः सम्मदः सरभसं विजृम्भते ॥ १४ ॥ २२८

प्रसन्नस्याऽस्तसङ्गस्य वीतरागस्य योगिनः ।
वृद्धिहेतुकलाभ्यासाद् भूतसिद्धिः समेधते ॥ १५ ॥ २२५

योऽजित्वा पवनं मोहाद् योगं युञ्जीत योगवित् ।
अपक्वघटमारुह्य सागरं स तितीर्षति ॥ १६ ॥ २२६

अङ्गप्रत्यङ्गदेहांल्लघयति सुतरां स्वेच्छया वर्द्धयेच्च
स्पृष्ट्वा लोष्टादि सर्वं व्यपनयति गदानौषधीकृत्य सद्यः ।
स्वच्छन्दं पर्वतादींश्चलयति सपदि स्थापयेच्चापि कामं
पृथ्वीसिद्धौ तदेतज्जनयति जनताश्चर्यमध्यात्मसिद्धः ॥ १७ ॥ २२७

शस्त्राघातपरम्परां जलभरे रेखामिवामीलयेत्
[2]सर्वोपद्रवविद्रवं वितनुते तोयाभिषेकक्रमात् ।
धातून् काञ्चनतां नयेदपि शकृन्निष्ठ्यूतमूत्रादिभि-
र्योगी सिद्धिगते जले तदखिलं चित्रं समासूत्रयेत् ॥ १८ ॥ २२८

देशैः कालैर्व्यवहितमपि व्यज्यते वस्तु दूराद्
उद्योतश्रीः प्रसरति तमः स्तोममुच्छिद्य सद्यः ।
सञ्जायन्ते तुहिनशिशिराश्चन्द्ररश्मेर्मयूखा-
स्तेजःशुद्धौ भवति दहनः किञ्च निर्देशवर्ती ॥ १९ ॥ २२९

चेतोवृत्त्या वाञ्छितं याति देशं दूरादुक्तां वाचमुच्चैः शृणोति ।
स्वैरं देहानाविशेदुत्सृजेद्वा वायोः सिद्धौ सर्वमेतद् विधत्ते ॥ २० ॥ २३०

शून्यं धातुर्जायते व्योमसिद्धौ तस्यां सत्यां सिद्धयस्ताः समस्ताः ।
उच्चैः किंच न्यञ्चिताशेषविश्वं तस्याऽवश्यं स्यात् परं धाम वश्यम्
॥ २१ ॥ २३१

---

१. मानुषस्य । २. क्षुद्रोपद्रव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थं जाते भूतजाते स्ववश्ये विश्वं पश्यन्निर्विशेषादशेषम् ।
योगी रोगोपद्रवैर्वर्जिताङ्गः स्वस्य स्वैरं दीर्घमायुस्तनोति ॥ २२ ॥ २३२

कैश्चिन्मूढैरहह । जडतावासवेश्मायमानै-
र्मानग्रन्थिग्रथितहृदयैर्दम्भसंरम्भसारैः[१] ।
पिण्डस्थैर्यं प्रति निजमनःसंनिवेशेऽप्यनीशै-
रध्यात्मस्य स्फुरितममलं नीयते पङ्गिलत्वम् ॥ २३ ॥ २३३

आलस्यवश्यमनसो यदि नैव सिद्धि - र्योगस्य दूषणपदं न तदा वदामः ।
यन्नैव पङ्गुरधिरोढुमलम्भविष्णु - र्दोषः स एष किमु नाम नगेश्वरस्य ?
॥ २४ ॥ २३८

येषामालस्यपङ्कादपसरति मनो ये कृपाम्भःप्रवाहा
ये ध्वस्ताशेषदोषाः समतृणमणिता येषु जागर्ति नित्यम् ।
तेषां निःशेषसिद्धिव्यतिकरजनितप्राज्यस(सा)म्राज्यभाजां
योगीन्द्राणामतन्द्राः परमपदभुवः सिद्धयः सम्भवन्ति ॥ २५ ॥ ३३५

इति श्री **समुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चय**ाभिधाने श्रीयोगशास्त्रे **सिद्धि**प्रकरणं सप्तमं समाप्तम् ॥

यदिह परपुमर्थः प्रार्थ्यते योगिभिर्यत्(द्)
विदधति किल दास्यं तस्य ताः सिद्धयोऽपि ।
तदिदमपविकल्पस्वान्तसंवित्तिरूपं
परमपदमिदानीमुच्यते सप्रपञ्चम् ॥ १ ॥ २३६

अमूर्तं त[२] - - त्वं कथमपि भवेन्मूर्तिकलितं
स्वरूपेणाऽमूर्तं तनुपरिणतावेतदतंथा ।
अपि स्थूलं सूक्ष्मं ध्रुवमपि न नित्यं गतगुणं
गुणैरप्याक्रान्तं ननु तनुगतं सर्वगमपि ॥ २* ॥ २३७

---

१. **संभारसारैः** । २. **'तत्तत्त्वं'** इति संभवेत् । * अत्र प्रतौ टिप्पिताः ३ श्लोकाः प्रकरणस्यान्तभागे द्रष्टव्याः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैतन्यं यस्य रूपं क्षिति-जल-पवन-ज्योति-राकाशसंज्ञे
भूतग्रामे शरीरानुकृतिपरिणते व्यज्यते सर्वतोऽपि ।
अप्यैकैकं तु तेभ्यः किमपि यदि वियुज्येत भूतं तदानी -
मव्यक्तं चित्स्वरूपं भवति 'मृत' इति प्रत्ययस्याऽऽदिबीजम् ॥ ३ ॥ २३८

भूतेषु पञ्चसु शरीरतया स्थितेषु व्यक्तीभवन्मननचिन्तनतश्चिदात्मा ।
उन्मीलितेषु जलजन्मसु तन्मयोऽपि गन्धो यथा किमपि भिन्न इवाऽवभाति
॥ ४ ॥ २३९

यदा चिदात्मा बहिरिन्द्रियार्थं - प्रथानुकूल्येन मनो नियुङ्क्ते ।
भवेत् तदानीं तदुपाधिदुःख- परम्पराऽमुष्य सुखैषिणोऽपि ॥ ५ ॥ २४०

यथा हि वह्निर्बहिरिन्धनेषु लब्धावकाशो भृशमेधतेऽसौ ।
मनः प्रसर्पद् विषयेष्वमीषु तथैव न श्राम्यति कामचारात् ॥ ६ ॥ २४१

आत्मन्येव मनो नियोज्य विषयद्वाराणि सर्वात्मना
योगेन प्रतिरुध्य शुध्यति पुनर्योगीश्वरः कोऽपि यः ।
तस्य स्यादमनस्कतापरिचयात् पञ्चेन्द्रियस्याऽप्यहो ।
स्पष्टानिन्द्रियता ततः स्थिरतरस्तत्त्वावबोधोदयः ॥ ७ ॥ २४२

ध्यानाभ्यासाद्विषयविमुखाद् भूतसाम्योपयुक्ता -
दात्मारामस्तदनु तनुते शाश्वतं स्वस्य देहम् ।
तस्याऽऽज्ञातः प्रभवति विषं व्याधयो वा न जन्तो -
र्जीवन्मुक्तः स भवति ततः कोऽपि लोकोत्तरश्रीः ॥ ८ ॥ २४३

न किञ्चिदपि चिन्तयेत्तदनु शून्यतत्त्वं परं
ततश्च सहजोदयः स्फुरति निर्विकल्पोज्ज्वलः ।
ततः प्रभृति नो सुखी स खलु नापि दुःखी च वा
प्रमेयमवबुध्यते किमपि नापि वाञ्छत्यसौ ॥ ९ ॥ २४४

पृथिव्याद्याधारः क्षरदमृतरोचिःशुचिसुधा -
कलासान्द्रः शाम्यत्तपनकरतापव्यतिकरः ।
[1]मुहुः स्वेच्छाचर्या प्रसवभरसौरभ्यसुभगः
किमप्यात्मारामः फलति परमब्रह्मणि लयम् ॥ १० ॥ २४५

१. मरुत् - प्र. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा हि नद्यः सरितामधीशं विशन्ति सर्वाः स्वरसप्रवृत्त्या ।
तथैव षण्णामपि तत्त्वमार्गाः समाधिमार्गं फलतोऽनुयान्ति ॥ ११ ॥ २४६
तथा हि **शाक्यव्रतिनो** मनोज्ञ-शय्यासनाहारविहारवन्तः ।
ध्यानाध्वनैकेन सयुक्ति मुक्ति - मित्थं समासादयितुं यतन्ते ॥ १२ ॥ २४७
वैराग्योपचयाद् विधूय विषयव्यासङ्गमङ्गीकृत-
ध्यानस्थानकशुद्धिसंचितविदां नैरात्म्यतत्त्वं प्रति ।
पर्यायेण [1]विलीनमानसमलप्राचीनचित्तक्षणो -
न्मीलन्निर्मलचित्तसन्ततिरहो । मोहद्रुहां जायते ॥ १३ ॥ २४८
मुक्तिः सैव तदेव तत्त्वमसमं निःशेषदुःखक्षयः
संक्षेपात् कृतिनां स एव सुखमप्युच्चैस्तदावेदितम् ।
इत्थं चिन्मयमेनमात्मविभवं सम्भावयन्तः क्षणा -
दध्यात्मोपनिषन्निषण्णमनसस्तस्मादमी **सौगताः** ॥ १४ ॥ २४९
नैयायिका अपि जनव्यवहारमात्रं संसिद्धये किमपि यत्तदपि ब्रुवन्तु ।
तत्त्वं तु योगविधिनैव विवेचयन्त-स्तेऽपि प्रतीतिविषयं घटयन्ति साक्षात्
॥ १५ ॥ २५०
श्रोतव्यः श्रुतिशास्त्रतः स्वमनसि स्थाप्यस्ततो युक्तिभि-
र्ध्यातव्योऽथ तथा निवृत्तविषयव्यासङ्गसङ्गीतकैः ।
आत्मा शुद्धसमाधिबद्धमनसां येनैष साक्षाद् भवे -
दित्यूचे श्रुतिरेव तत्त्वविषयज्ञानाय योगं परम् ॥ १६ ॥ २५१
[2]योगाभ्यासादात्मतत्त्वस्य येयं साक्षाद्बुद्धिर्दुःखविध्वंसहेतुः ।
जीवन्मुक्तिः सैव **यौगैरभीष्टा** यस्यां योगी तत्त्ववाचाममधीष्टे ॥ १७ ॥ २५२
यथा दाह्यं बाह्यं दहति वनवह्निः प्रसृमर -
स्ततः शाम्यत्युच्चैरधिकमधिकं तत्तनुतया ।
सुखं दुःखापेक्षं निखिलमपि निर्धूय सुधियां
तथा तत्त्वज्ञानं स्वयमपि कृतार्थं विरमति ॥ १८ ॥ २५३
[3]अतः संसाराब्धेस्तटभुवमभिव्याप्तजगतः
परं सिद्धेर्धाम श्रयति यतिचर्यासु विमुखः ।

---

१. **विलीय** । २. **ध्यानाभ्यासा०** । ३. **ततः** । ४. **०मपि व्याप्य** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदध्यात्मक्षेमप्रणयिनि पथेऽस्मिन्नवितथे
प्रसर्पन्तो **यौगाः** किमिव न भवेयुः शिवमयाः ॥ १९ ॥ २५८

कपिलकल्पिततत्त्वकथाममी तदनुगाः कथयन्तु यथा तथा ।
परपदं तु विशेषण एव तै-र्न खलु योगवियोगवतां मतम् ॥ २० ॥ २५५

यावद् बुद्धिर्ममत्वं सुखमसुखमिदं कर्मबुद्धीन्द्रियाणि
क्लेशावेशैकहेतुः परिमितसुखकृत् किञ्च तन्मात्रमैत्री
इत्येवं पूरुषस्य प्रसरति परितः प्राकृतोऽयं विकारः
संसारस्तावदेव प्रकृतिविकृतिभिश्छन्नचैतन्यतत्त्वः ॥ २१ ॥ २५६

आधिव्याधिप्रजननमनःक्लेशनिर्वेशमुख्यं
दुःखैकान्तं प्रकृतिजनितं सर्वतः सम्प्रधार्य ।
सम्यग् योगी गुणविरहितं कर्तृशक्तिव्यतीतं
ध्यायेदुच्चैः स्थिरतरचिदानन्दमध्यात्ममत्त्वम् ॥ २२ । २५७

अवगतः प्रकृतेः प्रकृतिस्ततो विरमति स्वयमेव हि पूरुषात् ।
विदितदुश्चरिता युवतिर्यथा श्लथयति प्रणय(यि)न्यपि विभ्रमम् ॥ २३ ॥ २५८

निवृत्तव्यापारप्रकृतिरतिवृत्तेन्द्रियगणः
पुमान् मोहेनाऽन्तर्बहिरपि न लिप्येत स यदा ।
स्वरूपं चिन्मात्रं निरुपधि विशुद्धं कलयत-
स्तदा मुक्तिस्तस्येत्यखिलमहितं योगललितम् ॥ २४ ॥ ३५९

भेदितापारसंसारदुर्यामिकाः सम्भवद्भूतवैषम्यदोषक्षयाः ।
जाग्रदुद्योगयोगप्रधानाध्वनाऽनेन **साङ्ख्याः** कथं निर्वृतिं नाऽऽप्नुयुः ?
॥ २५ ॥ ३६०

मीमांसकाः अपि कुटुम्बकदर्थनाभि-रैदंयुगीनतनवो गतयोगरङ्गाः ।
उच्चावचा यजनयाजनमुख्यकर्म-कष्टासिकां स्वमतिभिः परिकल्पयन्तु[1]
॥ २६ ॥ २६१

यतः- स्वीकृत्य ब्रह्मचर्याश्रममसमतमब्रह्मसंस्कारहेतोः
सेवित्वा धर्मपत्नीमृतुसमयमयीं शुद्धसन्तानसिद्ध्यै ।

---

१. ०कल्पयन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वानप्रस्थोऽपि भूत्वा परिशटितकफलाहारपूतान्तरात्मा
ब्रह्माद्वैताय चेतो नियमयति यतिस्थानकस्थस्ततोऽपि ॥ २७ ॥ २६२

स्फुरच्चिदानन्दमयेन तेजसा ब्रह्मात्मसंज्ञेन जगत्त्रयस्पृशा ।
अभिन्नमात्मानममुं विचिन्तयेत् ततश्चतुर्थाश्रमसीमनि स्थितः ॥ २८ ॥ २६३

अविद्याविध्वंसस्थिरतरसमाधिव्यतिकर -
क्रमोन्मीलद्विद्याकलितपरमब्रह्ममहिमा ।
प्रपञ्चोऽयं मिथ्येत्यधिकमधिगम्य स्फुटधिया
परब्रह्माद्वैते लयमयमुपैति प्रतिकलम् ॥ २९ ॥ २६४

दुर्वर्णं लभते सुवर्णमयतां सिद्धौषधैः शोधितं
यद्वत् तद्वदयं समाधिसुधिया निर्द्धौतदुर्वासनः ।
जीवात्मा लभते विशुद्धपरमब्रह्मात्मतामित्यहो ।
योगस्फूर्जितमूर्जितं विजयते मोक्षैकहेतुः परम् ॥ ३० ॥ २६५

वराक**श्चार्वाकः** किमपि यदि जल्पत्यनुचितं
यदृच्छा तत्रास्य त्रिदिवलिपिलोपं विदधतः ।
परं योगस्थैर्याद् विषयविनिवृत्त्या सुखमयी -
मिमां जीवन्मुक्तिं कथमिव निषेद्धुं प्रभवति ? ॥ ३१ ॥ २६६

समाधिशुद्ध्याऽद्भुतभूतसिद्ध्या सिध्यन्ति विश्वेऽभिमतानि यस्य ।
[१]नास्त्येव चित्तेऽभिमतं तु किञ्चित् त्वामेव **हे नास्तिक** । मुक्तमाहुः
॥ ३२ ॥ २६७

जिनस्तु नासाग्रनिविष्टदृष्टिः पद्मासनस्थः श्लथगात्रयष्टिः ।
ऐदंयुगीनेषु जनेषु मन्ये ध्यानं दिशत्यद्भुतमुद्रयैव ॥ ३३ ॥ २६८

तथाहि - धर्मध्यानमुपास्य तत्त्वविषये सिद्धान्तसन्धानतः
शुक्लध्यानधनञ्जयेन कुरुते कर्मेन्धनं भस्मसात् ।
कैवल्यं कलयत्यनिन्द्रियतया योगानुभावात्तथा
विज्ञानाम्बुनिधौ चकासति यथा भावास्तरङ्गा इव ॥ ३८ ॥ २६९

---

१. **कल्पयन्ति** । २. **नास्त्येव तस्याभिमतं नु किंतु** - पा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृत्वा च स्वपरोपकारमसकृन्नम्राखिलाखण्डलः
खेलत्कुण्डलिनीकलानियमितस्वस्वान्तकान्तस्थितिः ।
काष्ठीं योगकलां गतः परमयोगित्वेन सत्त्वाधिकः
स स्यान्निर्वृतिकण्ठपीठविलुठन्मुक्तावलीमध्यगः ॥ ३५ ॥ २७०

इत्येवं तत्त्वमार्गाः षडपि जडतया भेदमन्योन्यमेते
मुद्राऽनुष्ठानवेषैः स्वरुचिविरचितैः सर्वतो दर्शयन्ति ।
अन्योन्यं बाधितानां प्रमितिविषयतां कोऽनुमन्येत तेषां
तस्माद् विश्वाभ्युपेतं जनितपरपदं योगमेवाऽऽश्रिताः स्मः ॥ ३६ ॥ २७१

इति प्रकरणाष्टकं स्फुरति यस्य कर्णान्तिके
गिरामथ च गोचरे चरति यस्य चेतस्विनः ।
दुरन्तदुरितोदयच्छिदुरमस्य विश्वोत्तरं
पदं सपदि सम्पदः पदमदम्भभुज्जृम्भते ॥ ३७ ॥ २७२

अवल्गं वल्गन्तीं जगति **परमाणो**र्गिरिगुरोः
श्रवन्तीं ग्रन्थाध्वश्रितममृतरूपां गिरमिमाम् ।
विकल्पैरल्पोक्तैर्मलिनयत मा सिद्धवचसां
निरीहाणां वाचः किमु विपरियन्ति क्वचिदपि ॥ ३८ ॥ २७३

इति श्री **समुच्चय**विरचिते **आनन्दसमुच्चया**भिधाने श्रीयोगशास्त्रे **मुक्ति**प्रकरणमष्टमम् ॥

संस्थानभङ्गिमेवगच्छति देहलीनां सिद्धावलम्बविधिपूरितकर्णयुग्मः ।
शाखादिकैरवयवैः सममुत्तरङ्गं चेतः स्थिरं धरति योगकलासिकाभिः
॥ ३९ ॥ २७४

द्वाराणि साधयति साधितपीठबन्ध - श्छिद्राणि मुद्रयितुमङ्गचितं विधत्ते ।
काष्ठीं कलामनुगतो गुरुपादुकाना-मन्तर्निवेशपटुतां परिबिभ्रदित्थम्
॥ ४० ॥ २७५

---

१. **मधिगच्छति** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यो विश्वकर्मपरिकर्मभिरात्मदेह - प्रासादमादरपरः स्थिरमादधाति ।
स **श्रीसमुच्चय**मनिन्द्यमगण्यपुण्य-प्रागल्भ्यलभ्यमधिगच्छति नित्यमेव
॥ ४१ ॥ २७६

इतिश्री **आनन्दसमुच्चया**भिधानं श्रीयोगशास्त्रं समाप्तम् ॥ श्रीः ॥
शुभं भवतु ॥

ध्यानानि चतुरशीति ध्येयरूपाणि संख्यया ।
सप्ततिर्द्व्यधिका नाड्यः सहस्रा वपुषि स्थिताः ॥ १ ॥ २७७
इमा मुख्या दश प्रोक्ताः प्राणादिवायवो दश ।
नव मन्त्राख्यचक्राणि चान्द्र्यः कलाश्च षोडश ॥ २ ॥ २७८
कला द्वादश तिग्मांशोः पञ्चभूतस्य साम्यता ।
ब्रह्माण्डाचरणे सिद्धि - र्मुक्तिर्मोक्षपदे क्रमात् ॥ ३ ॥ २७९
उक्तं **समुच्चये**नेदं शास्त्रे **समुच्चया**भिधे ।
ज्ञेयं सदा सदाचारै - र्ज्ञानविज्ञानसिद्धये ॥ ४ ॥ २८०

इत्यानन्दसमुच्चयः समाप्तः ॥

तावद् भ्रमति नावार्थी यावत् पारं न गच्छति ।
सम्प्राप्ते तु परे पारे नावया किं प्रयोजनम् ? ॥ १ ॥
एवं शास्त्रादावपि ॥
चले चित्ते वनं (धनं) लोकः स्थिरे चित्ते वनं जनः ।
परमात्मनि विज्ञाते मनो नौकूपकाकवत् ॥ २ ॥

परपुंसि रता नारी भर्तारमनुवर्तते ।
एवं तत्त्वरतो योगी संसारमनुवर्तते ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुराणे भारतं सारं गीता सारं च भारते ।
तत्रापि च षडध्याया - स्ततोऽपि हि शनैः शनैः ॥ १ ॥

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २ ॥

अष्टमे प्रकरणे द्वितीयश्लोके टिप्पिताः ३ श्लोकाः-

यस्य मध्ये गतं विश्वं विश्वमध्ये गतं तु यत् ।
समरसं सहजं यच्च तत्तत्त्वं परमं विदुः ॥ १ ॥

सर्वाधारं निराधार - माधारातीतगोचरम् ।
अनौपम्यममूर्तं च परमात्मा स उच्यते ॥ २ ॥

दिशश्च विदिशश्चैवा - ध ऊर्ध्वं नैव विद्यते ।
यस्य देवविशेषस्य परमात्मा स उच्यते ॥ ३ ॥

आवरणचित्र-परिचय

मांडवी-कच्छस्थित खरतरगच्छ संघ जैन ज्ञानभण्डारनी उतावळी मुलाकात लेवानो प्रसंग आव्यो ते वखते त्यां उपाश्रयमां श्रीपूज्यजीनी परम्परागत गादीनी काष्ठपाट हती ते पण जोवामां आवी. ते पाट परना पीठ टेकववाना पाटियाना उपरना भागे आ शिल्प कोतरवामां आवेलुं जोयुं. सम्भवतः सूर्यनुं आ शिल्प छे. पण तेनी कला उपर कोई विलक्षण असर होवानुं लाग्या करे छे, ते तज्ज्ञो माटे अभ्यासनो विषय बनी शके, कदाच. पाट एक सैका करतां वधारे पुराणी हशे, एम जरूर कही शकाय. वारंवार अणघड रीते थता रंग-रोगानने कारणे विकृत बन्या लागता शिल्पमां पण तेनी असल शैली महदंशे जळवाई रही होवानुं लागे छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमुनिरत्नसिंहविरचित

चार लघु स्तोत्र-काव्यो

सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

जैन मुनिओए संस्कृत भाषामां रचेलुं स्तोत्रसाहित्य विपुल तो छे ज, परन्तु वैविध्यपूर्ण पण छे. विविध अलंकारोना प्रयोगो, विविध छन्दोनो उपयोग, पादपूर्ति-रूप काव्यो, एवा एवा अनेक साहित्यप्रकारोनुं सेवन कहो के सर्जन, जैन कविओए खोबले खोबले कर्युं छे. ए बधांनो उपयोग करीने तेमणे मात्र इष्टदेव - गुरुनी स्तुति अने भक्ति ज करी छे, पण कोई भौतिक लाभना आशयथी तेम नथी कर्युं, ते खास नोंधवा योग्य छे. आवा असंख्य स्तोत्रकाव्यो, वीतेलां वर्षोमां प्रकाशित थई ज चूक्यां छे, अने छतां हजी पण हस्तप्रतसंग्रहोमांथी नवां नवां स्तोत्रो प्रकाशमां आवतां ज जाय छे. अहीं आवां चार लघु काव्यो प्रस्तुत करवामां आवे छे. ते चार काव्यो क्रमशः १. श्रीपार्श्वनाथ स्तोत्र, २. श्रीसुजैत्रपुरमण्डनमहावीरजिन स्तोत्र, ३. सर्वजिनसाधारण स्तोत्र, ४.आनन्दलहरी स्तोत्र ए प्रमाणे छे. प्रथम बे स्तोत्रो वसन्ततिलका छन्दमां, त्रीजुं स्तोत्र भुजङ्गप्रयातमां, अने चोथुं शिखरिणी छन्दमां छे. शब्दरचना भक्तिप्रवण होवा साथे प्रासादिक तेमज प्राञ्जल जणाय छे. प्रथम ३ स्तोत्रो स्वतन्त्र रचनात्मक छे, चोथुं स्तोत्र समस्यापूर्तिरूप छे.

ते चोथा स्तोत्रनुं नाम **आनन्दलहरी** छे. आदि शङ्कराचार्ये रचेल, अनेक तन्त्र-यन्त्राम्नाययुक्त देवीस्तोत्र **सौन्दर्यलहरी** ए तन्त्र साहित्यमां तेमज स्तोत्रकाव्योमां शिरमोरसमी रचना गणाय छे. तेनां केटलांक पद्योनां प्रथम तथा अन्तिम चरणोने लई तेनी पादपूर्ति किंवा समस्यापूर्तिरूप स्तोत्ररचना ते आ आनन्दलहरी स्तोत्र. आमां जिनस्तुति करवामां आवी छे. १६ पद्यात्मक आ रचनाना प्रथम पद्यमां ज कर्ताए सौन्दर्यलहरीनां प्रथम-चरम चरणो उद्धरीने जिनस्तुतिनी रचना करवानो पोतानो मनोरथ प्रगट करेल छे. आ स्तोत्र प्रकाशमां आवतां पादपूर्तिसाहित्यमां एक मूल्यवान् कृतिनो उमेरो थाय छे.

स्तोत्र क्र. २ सुजैत्रपुरमण्डन महावीर जिननुं स्तोत्र छे. आ **सुजैत्रपुर** ते कयुं क्षेत्र हशे, ते जाणी शकायुं नथी. जाणकारो ते विषे प्रकाश पाडे तेवी आशा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ स्तोत्रकाव्योना प्रणेता मुनि रत्नसिंह छे. दरेक स्तोत्रना छेल्ला पद्यमां तेमणे पोतानो तथा पोताना गुरु-प्रगुरुनो नामोल्लेख ज छे. तेमनो प्राप्य परिचय आ प्रमाणे छे :

तपगच्छना गच्छपति श्रीहेमविमलसूरि (१६मो शतक) ना एक पट्टधर आ सौभाग्यहर्षसूरि हता. सम्भव छे के मुनि रत्नसिंहे उल्लेखेला पोताना प्रगुरु श्री संघहर्ष ते आ सौभाग्यहर्षसूरिना शिष्य होय. गच्छपति आ. हेमविमलसूरि महाराज एकदा विहार दरम्यान कपडवणज पधारेला, त्यांना श्रावक दोशी आणंदजीए तेमनुं शाही ठाठथी एवुं स्वागत कर्युं के तेथी गिण्णायेला कोईके ते समयना सुलतान मुझफ्फरशाह बीजानी आगळ चाडी खाधी; परिणामे शाहे गच्छपतिने पकडावीने केदमां पूराव्या. तेमने छोडाववा माटे, सुलताननी आज्ञा मुजब, १२,०००/- टकानो दंड भर्यो, ते पछी ज तेमनो छुटकारो थयो. आ पछी सूरिवरनी आज्ञा थवाथी तेमना चार विद्वान साधु शिष्यो - हर्षकुल गणि, संयमकुशल गणि, शुभशीलगणि तथा संघहर्ष गणि-ए राजसभामां जई पोताना पाण्डित्यनी चमत्कृति द्वारा शाहने रीझव्यो अने बार हजार टकानो दंड माफ करावी ते रकम संघने पाछी अपावी. आ ऐतिहासिक घटनामां उल्लेखायेला चार साधुओमांना एक संघहर्षगणि ते ज आ स्तोत्रोना कर्ताए अन्तिम पद्यमां निर्देशेला संघहर्ष होय तेम मानी शकाय. संघहर्ष गणिना शिष्य धर्मसिंह गणि थया, तेमणे सं. १५८०मां विक्रमरास रचेलो. तेमना शिष्य मुनि रत्नसिंह ते आ स्तोत्रोना कर्ता. तेमना विषे विशेष जाणकारी प्राप्य नथी. मात्र तेमना शिष्य शिवविजयजी नामे हता, जेमणे तीर्थमाळा बनाव्यानी नोंध सांपडे छे. तेमणे नेमि भक्तामर, पार्श्वकल्याणमन्दिर जेवी कृतिओ पण बनावी होवानुं जाणवा मळे छे.

चार पैकी पार्श्वनाथ स्तोत्रनी प्रति श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञान मन्दिर - कोबाथी, क्र. २-३ स्तोत्रोनी प्रति श्री हेमचन्द्राचार्य ज्ञान मन्दिर - पाटणथी तथा आनन्दलहरीनी प्रति स्व.मुनिरत्नाकरविजयजी - ग्रन्थसंग्रह, महुवाथी प्राप्त थयेल छे. जेरोक्स नकल आपवा बदल ते सर्व ग्रन्थ भण्डारोना कार्यकरोनो आभार मानीए छीए.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१)
श्री पार्श्वनाथ स्तोत्रम्

कल्याणकेलिसवनाय नमो नमस्ते,
श्रीमत्सरोजवदनाय नमो नमस्ते ।
रागारिवारकदनाय नमो नमस्ते,
वज्राभिरामरदनाय नमो नमस्ते ॥ १ ॥

अम्भोधराभकरणाय नमो नमस्ते,
लोकातिरिक्तिचरणाय नमो नमस्ते ।
संसारवार्द्धितरणाय नमो नमस्ते,
त्रैलोक्यसारशरणाय नमो नमस्ते ॥ २ ॥

सन्निर्मितांह्रिमहनाय नमो नमस्ते,
रागोरुदारुदहनाय नमो नमस्ते ।
विध्वस्तकृत्स्नकुहनाय नमो नमस्ते,
पुण्यद्रुमालिगहनाय नमो नमस्ते ॥ ३ ॥

संसारतापशमनाय नमो नमस्ते,
निर्दाक्ष्यदाक्षदमनाय नमो नमस्ते ।
सुव्यक्तमुक्तिगमनाय नमो नमस्ते,
रूपाभिभूतकमनाय नमो नमस्ते ॥ ४ ॥

पापौघपांशुपवनाय नमो नमस्ते,
सेवापरत्रिभुवनाय नमो नमस्ते ।
क्रोधाशुशुक्षणिवनाय नमो नमस्ते,
संसृत्युदन्वदवनाय नमो नमस्ते ॥ ५ ॥

नेत्राभिभूतकमलाय नमो नमस्ते,
शक्रार्चितांह्रियमलाय नमो नमस्ते ।
निर्नाशिताखिलमलाय नमो नमस्ते,
पद्मोल्लसत्परिमलाय नमो नमस्ते ॥ ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीअश्वसेनतनयाय नमो नमस्ते,
सर्वाद्भुतैकविनयाय नमो नमस्ते ।
विख्यातनिक्षितनयाय नमो नमस्ते,
निर्णीतभूर्युपनयाय नमो नमस्ते ॥ ७ ॥

श्रीसंघहर्षसुविनेयक**धर्मसिंह**
पादारविन्दमधुलिण्**मुनिरत्नसिंहः**
पार्श्वप्रभोर्भगवतः परमं पवित्रं,
स्तोत्र चकार जनताभिमतार्थसिद्धयै ॥ ८ ॥

॥ इति श्री पार्श्वनाथजिनस्तोत्रम् ॥

(२)

श्री सुजैत्रपुरमण्डनमहावीरजिनस्तोत्रम्

तुभ्यं नमः शुभ**सुजैत्रपुरा**वतार !,
तुभ्यं नमः कृतसुहृत्सफलावतार ! ।
तुभ्यं नमः प्रणतकामितकल्प ! वीर !,
तुभ्यं नमो वृषविधानविधौ सुधीर ! ॥ १ ॥

तुभ्यं नमः शमरसामृतवारिवाह !,
तुभ्यं नमः शमितदुष्कृतदावदाह ! ।
तुभ्यं नमोऽभव ! भवार्णवकर्णधार !,
तुभ्यं नमः शिवरमाहृदुदारहार ! ॥ २ ॥

तुभ्यं नमः कमलपत्रविलोचनाय,
तुभ्यं नमस्तनुभृतां भवमोचनाय !
तुभ्यं नमोऽनिमिषनाथततिस्तुताय,
तुभ्यं नमो भगवते त्रिशलासुताय ॥ ३ ॥

तुभ्यं नमो भुवनभीततिभञ्जनाय,
तुभ्यं नमस्त्रिजगतीजनरञ्जनाय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुभ्यं नमो वृषसरोजविरोचनाय,
तुभ्यं नमः करणभाजितरोचनाय ॥ ४ ॥

तुभ्यं नमः सुरनरासुरसेव्यपाद !,
तुभ्यं नमो घनघनाघनधीरनाद ! ।
तुभ्यं नमः समयसिद्धसरिन्नगेन्द्र !,
तुभ्यं नमः सततसज्जनदत्तभद्र ! ॥ ५ ॥

तुभ्यं नमो मयि विधेहि जयं जिनेश !,
तुभ्यं नमस्तनु शिवं शिवसन्निवेश !
तुभ्यं नमः कुरु कृपां करुणानिधान !,
तुभ्यं नमश्चिनु वृषं विहितावधान ! ॥ ६ ॥

तुभ्यं नमस्तव विभो ! रुचिरं चरितं,
तुभ्यं नमस्तव मत (तं) परमं पवित्रम् ।
तुभ्यं नमो जिन ! जपामि तवैव नाम,
तुभ्यं नमो भवसुखाय सुखैकधाम ॥ ७ ॥

श्रीसंघहर्षसुविनेय**कधर्मसिंह**
पादारविन्दमधुलिण्**मुनिरत्नसिंह**ः
श्रीमत्**सुजैत्रपुरवीरजिनेन्द्र**सार-
स्तोत्रं पवित्रमतिचित्रकरं चकार ॥ ८ ॥

॥ इति श्री वीरजिन स्तोत्रम् ॥

(३)

सर्वजिनस्तोत्रम्

नमस्ते सदानन्दसन्दोहकारिन् !,
नमस्ते नमस्ते गुणव्रातधारिन् ! ।
नमस्ते विभो! विश्वविज्ञातकीर्ते !,
नमस्ते नमस्ते जनाद्वैतमूर्ते ! ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमस्तेऽन्तरङ्गारिविध्वंसवीर !,
नमस्ते नमस्ते सुपर्वाद्रिधीर !
नमस्ते महानन्दमाकन्दकीर !,
नमस्ते नमस्ते शुगप्पित्तनीर ! ॥ २ ॥

नमस्ते नमन्नाकिनाथस्तुताय,
नमस्ते नमस्ते शिवश्रीयुताय ।
नमस्तेऽघतापस्फुरच्चन्दनाय,
नमस्ते नमस्ते जनानन्दनाय ॥ ३ ॥

नमस्ते महामोहमातङ्गसिंह !,
नमस्ते नमस्ते हतानागरंहः (हताऽनङ्गरंह !) ।
नमस्ते सुधासिन्धुजिद्वाग्विलास !
नमस्ते नमस्ते शिवश्रीनिवास ! ॥ ४ ॥

नमस्ते तमस्तोमनिर्नाशनांशो !,
नमस्ते नमस्ते सुधीदृक्सुधांशो ! ।
नमस्ते समस्तावलोकावबोध !,
नमस्ते नमस्ते कृतक्रोधरोध ! ॥ ५ ॥

नमस्ते सुधारश्मिरम्याननाय,
नमस्ते नमस्ते समस्तावनाय ।
नमस्ते गुणव्याप्तदिग्मण्डलाय,
नमस्ते नमस्ते नताखण्डलाय ॥ ६ ॥

नमस्ते भजे पादपद्मं त्वदीयं,
नमस्ते नमस्ते क्षिपाऽघं मदीयम् ।
नमस्ते विभो ! पाहि मं(मां) दासदासं,
नमस्ते नमस्ते तनु स्वाङ्कवासम् ॥ ७ ॥

श्रीसङ्घहर्षसुविनेयक**धर्मसिंह**-
पादारविन्दमधुलिण्**मुनिरत्नसिंहः** !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमज्जिेश्वरगुणग्रहणप्रसक्तः,
स्तोत्रं चकार रुचिरं चिरभक्तियुक्तः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीसर्वजीनस्तोत्रम् ॥

(४)

आनन्दलहरी

चिदानन्दं नत्वा विशदविधिनाऽऽनन्दलहरीं
सुधाधारासारामरपदविश्राणनफलाम् ।
ब्रुवे पादं पूर्वं चरममय **सौन्दर्यलहरी**-
स्तवादासाद्योच्चैर्जिनपदगुणग्रामरुचिराम् ॥ १ ॥

तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवं[१],
ललाटे ये भक्तिप्रणतिवशतः साधु ददते ।
लभन्ते ते भव्या जनव(वि)दितजैनेन्द्रपदवीं,
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम्[२] ॥ २ ॥

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं,[३]
प्रभो ! प्राणायामप्रभृतिभिरुपायैर्निजहृदि ।
सनाध्यानासक्तिस्तिमितनयनास्त्वामवितथं,
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम्[४] ॥ ३ ॥

शिवं(वः) शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः[५],
सुखं सत्त्व तत्त्वं त्वमसि मम माहात्म्यमतुलम् !
कृपासिन्धोस्ते तच्चरणपरिचर्याप्रवणधी -
र्भवानि ! त्वद्दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणाम्[६] ॥ ४ ॥

दृशा द्राघीयस्या ह्यविदलितनीलाम्बुजरुचा[७],
सुचारुश्रीमत्त्वद्वदनकमलालोकनपरः ।

टि. श्लोकक्रम तथा पाठांतरोनी नोंध अमे वि. के. सुब्रमण्यम द्वारा सम्पादित सौन्दर्यलहरी ग्रन्थमांथी करी छे. (१) श्लोक.२, पं.१ । (२) श्लो. २२, पं. ४ । (३) श्लो. ३८, पं. १ । (४) श्लो. २१, पं. ४ । (५) श्लो. ३२, पं. ४ । (६) श्लो. २२, पं. १ । (७) श्लो. ५७, पं. १ । १. '**०लोत्पल०**' इति मु.पुस्तके पाठो दृश्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्फुरद्भक्त्यासक्त्या पुलकिततनुः श्रीपतिरिव,
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः[८] ॥ ५ ॥
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे[९],
स्पृहासक्तस्वान्तं शुचिसमयवाक्यामृतरसैः ।
अयं पुण्यः पापः किमिति न विधेयं मनसि यद् ,
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः[१०] ॥ ६ ॥
क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा[११],
नितम्बिन्योऽनेका मदनमदहृत्वर्ष्म विरुजम् ।
यशः शुभ्रं दिव्या द्युतिरिह भवत्पत्कजनते।
मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणा [२]भणितयः[१२] ॥ ७ ॥
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा[१३],
स्वयं गत्वा भक्त्या सुमु(म)निचयमानीय महसा ।
तवाऽर्चां यः कुर्यात्सकृदपि तदुक्तेन विधिना,
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीम्[१४] ॥ ८ ॥
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरी[१५]
पयःपारावारं भवति ननु तेषामथ तदा ।
प्रणाशोऽज्ञानस्य प्रतनघनघोरं यदुदितं,
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्[१६] ॥ ९ ॥

दरिद्राणां चिन्तामणि[३]गणनिका जन्मजलधौ[१७],
निमज्जज्जन्तूनां प्रवरतरणिः शं वितनुतात् ।
तवाऽमोघा वाणी विशदगुणसन्दोहसुभगा;
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दैः[४]स्तुतिशिरा[१८] ॥ १० ॥

भवात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं[१९],
विना त्वां नो कश्चिद् प्रभुरिह जगत्राथ ! जगति ।

---

(८) श्लो. ९६, पं. २ । (९) श्लो. ५७, पं. २ । (१०) श्लो. ५७, पं. ४ (११) श्लो. ७, पं. १ (१२) श्लो. १५, पं. १ । २. '**फणितयः**' इति मु. प्रतौ । (१३) श्लो. २१, पं. ३ । (१४) श्लो. २२, पं. ३ (१५) श्लो. ८, पं. ४ (१६) श्लो.५, पं. ४ । (१७) श्लो. ३, पं. ३ । ३. '**०गुणनिका**' इति मु. प्रतौ । (१८) श्लो. ३, पं. २ । ४. '**०स्तुतिझरी**' इति मु. प्रतौ । (१९) श्लो. ४, पं. ३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतस्त्वामेवोच्चैर्गुणगण ! नयामि स्तुतिपथं,
वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः[२०] ॥ ११ ॥
हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननी[२१],
यथेच्छं कर्णाभ्यां तव गिरमथापीय मधुराम् ।
यथा मोदं धत्ते मनसि निभृतं नाम न तथा,
सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरि(र)णीम्[२२] ॥ १२ ॥
त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणो[२३],
न कोऽपि त्वं वाचा जगदखिलमाह्लादयसि च ।
भवज्वालाजालाकलितवपुषामीश ! मनुजां,
[१]दयार्द्रा दृष्टिस्ते शिशिरमुपचारं रचयति[२४] ॥ १३ ॥
विसा(शा)ला कल्याणी स्फुटरुधिरबोधा कुवलयै[२५]
र्निरौपम्या दृष्टिर्निपतति जने पुण्यवति ते ।
भवद्भक्त्यासक्ते सुरमहितसम्यक्त्वसुभगे,
ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशा(शां)नु सदृशीम्[२६] ॥ १४ ॥
विपद्यन्ते विश्वे विधि-शतमखाद्या दिविषद-[२७]
स्तदा सद्यः पातिन्यहह ! ममता का निजतनौ ?
प्रमादं हित्वाऽतः स्तुतिपथममुं नाम नय भोः !,
कवीन्द्राणां चेतःकमलवनबालातपरुचिम्[२८] ॥ १५ ॥
श्रीसंघहर्षसुविनेयकधर्मसिंह
पादारविन्दमधुलिण्मुनिरत्नसिंहः ।
शैलात्मजास्तवपदद्वयसन्निबद्धं,
स्तोत्रं चकार परमं परमेश्वरस्य ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीसौन्दर्यलहरीपदद्वयनिबद्धसमस्यया "आनन्दलहरी" नाम श्रीजिनपतिस्तुतिः समाप्तमासेति मङ्गलमालिकाः प्रथयन्तु ॥ श्री वीरजिनप्रसा[दा]त् ॥ श्रीः ॥

---

(२०) श्लो. १७, पं. ४ । (२१) श्लो. ५, पं. १ । (२२) श्लो. २८, पं. १ । (२३) श्लो. ४, पं. १ । (२४) श्लो. ३९, पं. ४ । १. **'दयार्द्रा या दृष्टिः'** इति मु. प्रतौ । (२५) श्लो. ४९, पं. १ । २. **रुचिरयोध्या०** इति मु.प्रतौ । (२६) श्लो. ९०, पं. १ । (२७) श्लो. २८, पं. २ । (२८) श्लो. १६, पं. १ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोंकागच्छना श्रीपूज्योना त्रण भास

सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

(१)

बृहत् लोंकागच्छनी परम्परामां थयेल लखमसी (लिखमीचंद) ऋषिना शिष्य ऋषि गांगजीना काळधर्मनी घटनानो ऐतिहासिक परिचय आपती प्रस्तुत कृति ऋषि शिवजीनी रचना छे.

आ रचनामां पूज्य ऋषिना सामान्य गुणोनुं निरूपण कर्या बाद पूज्यश्रीना काळधर्म वखते हाजर रहेला बगसरा श्रीसंघना श्रावकोमांथी थोडाकनां नामनो उल्लेख कर्यो छे. तेमनी अन्तिमयात्रामां सूरत वगेरे अनेक स्थळना संघो हाजर रह्यानो उल्लेख (कडी ७) नोंधनीय छे.

जाम अने जेठवा राजाओ तेमज झालावाडना राजवीओ तेमना प्रेमी होवानो उल्लेख (कडी ८) ऐतिहासिक छे.

पोरबन्दरमां तेमणे १७६७मां चातुर्मास कर्युं हतुं, त्यारे तेमनी प्रेरणाथी दरियानी खाडीमां माछीमारीनो निषेध त्यांना राणाओ कर्यो हतो तेवो उल्लेख (कडी १२-१३) इतिहासनी दृष्टिओ महत्त्वनो गणाय तेवो छे. तो ते ज प्रमाणे हालारना राजवी पासे पण तेमणे जीवदयानुं कार्य कराव्युं होवानो इशारो कडी-११मां प्राप्त थाय छे. आ उपरथी लोंकागच्छनो तथा गांगजी ऋषिनो प्रभाव राजा, प्रजा अेम उभय वर्गमां केटलो बधो हशे तेनो अंदाज मळे छे.

पोरबन्दरना राजवीने बरडापति तरीके ओळखावेल छे (कडी १३) ते पण ध्यानपात्र बाबत लागे छे.

गांगजी ऋषिनो स्वर्गवास बगसरामां थयेलो ते तो आ भास द्वारा स्पष्ट छे, पण तेनी तिथि तथा संवतनो उल्लेख आखी रचनामां क्यांय थयो नथी. १६मी कडीमां सं. १७७६ ने भा. सु. ५ ने भृगुवारनो उल्लेख छे, ते तो आ भासनी रचनानी तिथि होवानुं जणाय छे. हा, अे ज दहाडे ऋषिनो काळधर्म थयो होय ने रचना पण ते ज दहाडे थई होय तो बनवा जोग जरूर छे, पण ते विशे चोक्कस कहेवुं शक्य नथी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासमां आवती **वाजिंत्र वाजे...** आ पंक्तिमां (कडी ७) ते वखते थतो लोकव्यवहार देखाडे छे.

कर्तानो तेमज कर्तानी अन्य कोई कृतिनो उल्लेख मळतो नथी, परन्तु कर्ताना अने गांगजी ऋषि-लखमसी ऋषिना गुणोनो उल्लेख, कर्ताना प्रप्रशिष्य **ऋषि माहावजीओ** पोते लखेल **कयवन्ना रासनी** पुष्पिकामां करेल छे, ते पुष्पिका अत्रे नोंधुं छुं : -

संवत १८६१ वर्षे शाके १७२६ प्रवर्तमाने श्री फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे २ द्वितीया तिथौ मार्तण्डवासरे श्री वेरावल बंदरे श्री बृहल्लोकागच्छे सकल कोविदकलासाम्राजान् पूज्योत्तमपूज्यश्री ऋषि श्री ५ **लखमसीजी**जी तच्छिष्य सौभाग्यातिशयसूचिमूर्तिर्भूरिचतुर्दशविद्यालङ्कृतगात्रगुणयुक्त पूज्यश्री ऋषि श्री ५ **गांगजी** तत्शिष्य समस्तशास्त्राभ्यासेन धीरोदारगाम्भीर्यप्रकृतित्वाद् रूपसंपत्-सुशोभितः पूज्यश्री ऋषिश्री ५ **शिवजी**जी तत्शिष्य सम्यक समतारसगुणोपेतान् साहित्यतर्कलक्षणज्योतिष्कागमछन्दालङ्कारगात्र इत्याद्यनेक-गुणयुक्त पूज्यजी ऋषिश्री ५ **जगसी**जी तत्शिष्य विद्यमानअनेकागम विचारस्तरतत्त्वबोधकान्यत्षट्त्रिंश-द्रागग्रामगुणोपेतान् श्रीमद्गुरो दीक्षाशिक्षादिदायकान् पूज्योत्तम पूज्यश्री ऋषिश्री ५ **खीमजी**जी तत्शिष्य लिखी० ऋषि **माहावजी** स्वात्मार्थे ।

(२)

श्री महानन्दऋषिकृत
श्री जगजीवनऋषिभास

१

बन्ने भास विज्ञप्तिरूपे रचायेल छे. लोंकागच्छना श्री पूज्य जगजीवन ऋषिने पालनपुर पधारवानी विनंतीनुं वर्णन प्रथम भासमां छे. आमां जगजीवन ऋषि ओसवाळ वंशीय छे,जोईताराम तथा रतनादेवी तेमना माता-पिता छे तथा श्री जगरूपऋषि तेमना गुरु छे, तेवी दस्तावेजी विगतो प्राप्य छे. जन्मस्थान के वतन अंगे कोई निर्देश नथी.

पालनपुरना विविध श्रावक कुटुम्बोनो परिचय तेनां गोत्रोनां नामथी आमां मळे छे ते नोंधपात्र बाबत छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासकार ऋषि महानन्द पोते भीम ऋषिना शिष्य छे तथा पोते पालनपुर चोमासुं रह्या हता त्यारे त्यांना संघना कहेवाथी आ विज्ञप्ति भासनी तेमणे रचना करी होवानुं कडी १४ मां नोध्युं छे.

२.

बीजो भास पण लगभग आवी ज विगतो आपे छे. ते मास दीव बन्दरना संघनी विज्ञप्तिरूप भास छे. अमां विशेषता ऐ छे के दीवना वीशा तथा दशा श्रीमाळी, सोरठीया, पोरवाड, ओसवाळ, मोढ - एम दरेक ज्ञातिना संघोए एकठा मळीने विनंती पाठवी छे, सौने गच्छनायक पधारे तेवी आशा छे. कडी ६ मां श्रीरूपऋषि तथा जीव ऋषि ए बे पूर्व गुरुजनोनो उल्लेख छे. बाकी बधुं लगभग प्रथम भास जेवुं ज छे.

महानन्द ऋषि लोंकागच्छना एक समर्थ कवि छे. तेमनी अन्य, पंचमी स्वाध्याय-आठम स्वाध्याय-नवपद स्वाध्याय-आत्मप्रबोध स्वाध्याय आदि १०-१२ गुजराती कृतिओ प्राप्त थाय छे. कृतिओ परथी रचनाकाळ १९मी शताब्दीना मध्यकाळमां (१८४० आसपास) होई शके खरो, पण ते माटे बीजी कृतिओ जोवी पडे.

प्रत शुद्ध छे. भावनगर-जैन धर्म प्रसारक सभानी हस्तप्रतोनुं सूचिपत्र करतां प्रस्तुत प्रतिनुं संशोधन करी प्रगट करी छे.

●

शिवजी मुनि-कृत

गांगजी ऋषि भास

अथ देशी - रतनगुरुनी

गुणवंता गुरु **गांगजी** रे, तमे तरत कीयो परीयाण,
माया मेली छे कारिमी रे, तमे चाल्या चतुर सुजांण
गुणवंता गुरु गांगजी रे ...१

गेंवरनी परें गाजता रे, तुझ देश-प्रदेशें नांम.
मोटा राजेसर मानता रे, नित समरे तुम नाम, गुण ... २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहु धरमी धन्य **बगसरुं** रे, जिहां संघ सहु सुखकंद,
दोसी खीमासुत सोभता रे, कहुं **केसवजी** कुलचंद, गुण ... ३
धर्मधुरंधर **मोदी मेघजी** रे, वली बुद्धि भली **रणछोड**,
हेम समोवडि दीपे **हेमसी** रे, **सधराज** पुरे मन कोडि, गुण ... ४
संघ मांहि सोभागी जांणीयें रे, भला **डुंगर** ने **मोरारि**,
पीतांबर मालव जागजी रे, वली **प्रेमो जसांणी** सार, गुण ... ५
सुखकारण **जीवो** संघवी रे, धरे **पूंजो** श्रीजिन ध्यांन,
व्यापारी **वीर्चंद** जांणीयें रे, बहुं **मेलजी क्रमसी** मांन गुण ... ६
इम संघ सहु मिल्या सांमटा रे, जांणे **सूरति** केरो संघ,
वाजित्र वाजे गुलाल ऊडे घणा रे, एक सुरपद पाम्या गंग गुण... ७
जांम नें जेठवो जाणता रे, वली **झालावाडें** राजि
कहुं नरपति वली केटला रे, ते माने तुम लाज, गुण ... ८
संघ सहु तुम चाहता रे, वली अवर कहुं अणपार,
सास्त्र कही तसुं रीझवे रे, ताहरी वांणीना बलिहार, गुण ... ९
तेज झलांमल भालनो रे, तोरी कुंकुमवरणी काय,
चऊद विद्यागुण सागरु रे, एहवो नर पेदा नही थाय, गुण ... १०
हालारनो पति रीझीयो रे, कहे ल्यो मनवंछित दांम,
गंग कहे नही लीउं राजीया रे, माहरे जीवदयासुं काम, गुण ... ११
सतरसडसठ्यो सोहामणो रे, रह्यो **पोरबिंदर** चोमास,
रांणो रीझ्यो गुण देखिने रे, कहे पूरुं तुमारी आसि, गुण ... १२
सुणि **बरडापति** राजीया रे, हूं मागुं वचन मयाल,
लेख लखी आपो मुझनें रे, कोई खाडी न नाखे जालि, गुण ... १३
राणो कहे धन धन तुं रषी रे, तुझ सम अवर न कोय,
धर्मपडो वजडाव्यो सहेरमां रे, जेम जीव न मारे कोय, गुण ... १४
एम धन धरमनो बांधीयो रे, वली जे जे थयो जस वास,
गुणरतनें भर्या **गांगजी** रे, तुमें पांमज्यो शिवपुर वास, गुण ... १५
सतरछोंतेरे श्रावण ऊजली रे, **पांचिमनें भृगुवार**,
बगसर सहेर सोहांमणो रे, जिहां संघ सहु सुखकार, गुण ... १६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु **लिखमीचंद** गाजता रे, तसु सेवक **गंग** सुजांण,
गुण गाया गुरुदेवना रे, मुनि **शिवजी** कहे शुभवांणि, गुण ... १७

॥ इति गुरुदेवनी भास सम्पूर्णम् ॥

●

महानन्दमुनिकृत

जगजीवन ऋषि-विज्ञप्ति भास - १

आघा आम पधारो पूज्य० ए देसी (शी)

सरसति सांमणि पहलां प्रणमी, श्रीगुरुपद सिरनांमी
संघ सकलनी सानिध सेती, गावूं श्री गणस्वांमी
वहैला पूज्य पधारो राजि श्री संघ अरज करें छें ... १

रे पंथी ! तू जाज्ये पेंहलो, **भावनगर** परचारी,
जिहां गछनायक गिरुआ विचरे, श्री **जगजीवन** जयकारी ... २
चोरासी गछचंद बीराजें, गछनायक गुणें गाजें,
श्री**जगरूप** तणें पट छाजें, करम अरिदल भाजें ... ३
जोईता नंदन जय जगवंदन, **ओसवंश** अवतारी,
रतनादे उररत्न कहायो, इल माहें उपगारी ... ४
पंच सूमते सूमता स्वांमी, गुपति गुपित विहारी,
वाडि वीसूधे ब्रह्मचर्य पालें, क्रोध कसाय नीवारी ... ५
आगम अंगोपांगें आखें, उपसमरसनी वांणी,
दया धर्मनी देशन दाखें, अधीक भाव मन आंणी ... ६
धन्य नगर-पुर सुंदर सोहें, धन्य धरा धनवंती,
धन्य मांनव जे नित्य प्रति वंदें, चरणकमल मनखंती ... ७
तुम गुंण कुसुम तणा परिमलथी, मन भमरा अति मोह्या
दरसणनी उतकंठा जागी, करम सकल खल खोया ... ८
श्री**पालणपुर** संघ शिरोमणी, विनय ववेक विचारी,
दांन दया गुंण-व्रतना धारक, साधू सकल हितकारी ... ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेंहता वैद वडा वखताला, **भणसाली भूपाला**,
लूंणीया मेंहता लायक कहीयै, चतुर **चौधरी** चावा ... १०
पारसनें प्रभू प्रांणथी प्यारा, आतमाना आधारा,
कोठारी करजोडी वंदे,दीयो दरसण बलिहारा ... ११
श्राविका सकल गुणें संयुत्ता, सीलवती सतधारी,
प्रभू वंद्यानो प्रेम धरों छें, दीयो दरीसण दलधारी ... १२
चरणकमल वांदी श्रीजीना, जनम कृतारथ कीजें,
मानवभवनो लाहो लीजें, कारज सघलां सीझे ... १३
श्रीगुरु **भीम** तणा पदसेवी, स्थवर(वि) सूंजाण सुग्यांनी,
पालनपुर मे रह्या चूंमासें., दया-धर्मना दांनी ... १४
संघ सकलनी वीनती मांनि, भास रची मनरंगे,
मुनि **मोटा** शिष्य **महानंद** जंपें, उलटधरी नीज अंगे ... १५

●

महानन्द मुनि कृत

जगजीवन ऋषि-विज्ञप्ति भास - २

॥ थांने गहूली छें जी ए देशी ॥

सरसति सांमणि विनवुं, माहरा सदगुरुजी,
लूली लूली लागुं पाय, सदा गुरु वंदोजी,
गुण गावुं गछराजना, माहरा सदगुरुजी,
संघ सकल सुखदाय, सदा गुरु वंदोजी ... १

पांच इंद्री संवर करी, माहरा सदगुरुजी,
नवविधि ब्रह्मचर्य धार, सदा गुरु वंदोजी,
पंच सुमति सुमता करी, माहरा सदगुरुजी,
पंच महाव्रतधार सदा गुरु वंदोजी ... २
च्यार कषाय परिहरी, माहरा सदगुरुजी,
पाले पंच आचार, सदा गुरु वंदोजी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुपति आराधइ गुणनीलो, माहरा सदगुरुजी,
गुण छत्रीसे धार सदा गुरु वंदोजी ... ३
गच्छ चोराशी चंदलो, माहरा सदगुरुजी,
श्री **जगजीवन** गुरुराय, सदा गुरु वंदोजी,
पटधारी **जगरूपना**, माहरा सदगुरुजी,
प्रणम्या पातिक जाय, सदा गुरु वंदोजी ... ४
साह **जोईता** कुल जग जयो माहरा सदगुरुजी,
दीपें तेज दिनंद, सदा गुरु वंदोजी,
रतनादे उर उपना, माहरा सदगुरुजी,
भेटें भवि चरणवृंद (चरण भविवृंद) सदा गुरु वंदोजी ... ५
श्रीरूपऋषि जीवऋषि तणें, माहरा सदगुरुजी,
पाट उद्योतककार, सदा गुरु वंदोजी,
शिवपुर मारग साधवा, माहरा सदगुरुजी,
इल मांहे अवतार, सदा गुरु वंदोजी ... ६
पीहर पंचे भूतना, माहरा सदगुरुजी,
षटकायना आधार, सदा गुरु वंदोजी,
द्वादश अंगी सूत्रना, माहरा सदगुरुजी,
आखें अरथ उदार, सदा गुरु वंदोजी ... ७
इम अनेक गुण आगरु, माहरा सदगुरुजी,
कहेंता न लहु पार, सदा गुरु वंदोजी,
एहवा गुरुजिने वंदता, माहरा सदगुरुजी,
पांमीजे भवपार, सदा गुरु वंदोजी ... ८
दीवबिंदर संघ सूंदरु, माहरा सदगुरुजी,
विनवै वारंवार, सदा गुरु वंदोजी,
भाव धरी भवियण प्रते, माहरा सदगुरुजी,
द्यो वेहेला दीदार, सदा गुरु वंदोजी ... ९
श्रीमाली संघ सोभतो, माहरा सदगुरुजी,
वीसा विस्व विख्यात, सदा गुरु वंदोजी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसा दयागुणे दीपता, माहरा सदगुरुजी,
आख्या अति अवदात, सदा गुरु वंदोजी ... १०
सोरठीआ संघ सुखकरु, माहरा सदगुरुजी,
श्री पोरवाड प्रधांन, सदा गुरु वंदोजी,
ओशवंशे स्वामि उपना, माहरा सदगुरुजी,
ते तो गुणना निधान, सदा गुरु वंदोजी ... ११
मोढ-वणिक मनरंगथी, माहरा सदगुरुजी,
प्रणमै श्रीगुरु पाय, सदा गुरु वंदोजी,
हेतकरी हितकारणी, माहरा सदगुरुजी,
सेवा करे सुखदाय, सदा गुरु वंदो जी, ... १२
विनयवती सहू श्राविका, माहरा सदगुरुजी,
झूलर झाकझमाल, सदा गुरु वंदो जी,
गिरुआ श्री गछराजना, माहरा सदगुरुजी,
गावै गीत रसाल, सदा गुरु वंदोजी ... १३
संघ सकलनी वीनती, माहरा सदगुरुजी,
मांनों श्रीमूनिराय, सदा गुरु वंदोजी,
तुम दरिसण सुख संपजे, माहरा सदगुरुजी,
पातिक दूर पलाय, सदा गुरु वंदोजी ... १४
विनती करीनें वरणवी, माहरा सदगुरुजी,
भावै गछपति भास, सदा गुरुवंदोजी,
महानंद मुनीवर वीनवै, माहरा सदगुरुजी,
पूरौ मननी आस, सदा गुरु वंदोजी ... १५

C/o. अश्विन संघवी
गोपीपुरा, कायस्थ महोल्ले,
सूरत-३९५००१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दोनो कोष

गांगजी ऋषि भास :

क.	पं.		
२	१	गेंवर	गजवर
१४	१	रषी	ऋषि
१४	३	धर्मपडो	धर्म-पडह
१५	४	शिवपुरवास	मोक्षमां वास

भास - १

४	४	इल	इला - धरती
५	१	सूमते सूमता	समितिथी समिता - युक्त (समिति पांच, जैन मुनिनी आचार मर्यादानो सूचक शब्द)
५	३	वाडि	वाड,(ब्रह्मचर्यपालननी नव वाड)
६	३	देशन	देशना - प्रवचन
१०	१	वखताला	(सारा) वखत वाळा (भाग्यशाली)

भास २

१	२	लूली लूली	लळी लळी
३	३	गुपति	गुप्ति (३ गुप्ति, जैन मुनिनो आचार)
७	१	पीहर	पीयर - पितृघर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सिद्धिविजय रचित
श्रीविजयदेवसूरि भासद्वय

म. विनयसागर

श्री विजयदेवसूरि भासद्वय के प्रणेता श्री सिद्धिविजय महोपाध्याय श्री मेघविजय के प्रगुरु (दादागुरु) थे और जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिजी के प्रशिष्य थे । सिद्धिविजयजीका समय १७ वीं शताब्दी का अन्तिम चरण या १८ वीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है । इनके द्वारा प्रणीत अन्य कृतियाँ अन्य भण्डारों में अवश्य ही प्राप्त होंगी, किन्तु मुझे अभी तक चार लघुकृतियाँ ही प्राप्त हुई हैं : - १- २. नेमिनाथ भास और ३-४. श्री विजयदेवसूरि भास !

श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञान भण्डार, कोबा सूचि पत्र भाग-४ के अनुसार श्रीसिद्धिविजयकृत निम्न कृतियाँ और प्राप्त हुई है जो इस प्रकार है :-

सिद्धिविजय

१४१४२ (१) सीमन्धर जिनस्तवन, वि० सं० १७१३, आदि-अनन्तचौवीसी जिन नमूं, अन्त-भविक जन मंगल करो, ढाल-७, गा० १०६, पृ० ५अ

(२) विजयप्रभसूरि स्वाध्याय, आदि-आवउ सजनी सहगुरु, अन्त-भावविजय बुध सीसोजी, गा० ९

१४५३६ (४) जम्बूस्वामी सज्झाय, आदि-राजग्रही नगरी वसे, अन्त-तास तणा गुण गाया रे, गा० १३

(२२) पंचइन्द्रिय सज्झाय, पृ० २८अ, आदि-रे जीउं विषय न राचीइ, अन्त-सेवजो नीसदीसो रे, गा० १३

१८१५६ (३६) जम्बूस्वामी सज्झाय, आदि-राजग्रही नगरी वसे, अन्त-सिद्धविजय सुपवाया रे, गा० १४, पृ० १०आ-११अ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका स्फुट पत्र प्राप्त है, जिसमें चारों ही कृतियाँ एक साथ ही लिखी गई हैं। इस पत्र का माप २४.३ - १०.४ से.मी. है, पत्र १ हैं, दोनों भासों की कुल पंक्ति १५ तथा प्रति अक्षर ४२ हैं। लेखन समय सम्भवतः १७वीं सदी का अन्तिम चरण है।

शासन प्रभावक विजयदेवसूरि प्रसिद्धतम आचार्य हुए हैं। ये जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि के प्रशिष्य तथा श्रीविजयसेनसूरि के पट्टधर थे। विक्रम संवत १६३४ इलादुर्ग में जन्म, संवत १६४३ राजनगर में श्री हीरविजयसूरि के करकमलों से माता के साथ दीक्षा, १६५५ सिकन्दरपुर में पन्यास पद, १६५६ स्तम्भतीर्थ में उपाध्याय पद और सूरिपद प्राप्त हुआ एवं श्री विजयसेनसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् संवत १६७१ में भट्टारक पद प्राप्त किया।

जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरि के पश्चात् विजयदेवसूरि की दिग्गज आचार्यों में गणना की जाती है। विजयदेवसूरि रचित कोई साहित्य प्राप्त हो एसा ज्ञात नहीं है, किन्तु इनसे सम्बन्धित खरतरगच्छीय श्रीवल्लभोपाध्याय रचित (र.सं.१६८७ के आस-पास) विजयदेवमाहात्म्य और श्री मेघविजयजी रचित श्रीतपगच्छापट्टावलीसूत्रवृत्त्यनुसन्धानम् के अनुसार इनका संक्षिप्त जीवन चरित्र प्राप्त होता है। सम्राट अकबर के सम्पर्क में ये आए हो ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, किन्तु सम्राट जहांगीर के समय में इनका प्रभाव अत्यधिक बढ़ा था। जहांगीर इनको बहुत सम्मान देता था और गुरु के रूप में स्वीकार करता था। यही कारण है कि संवत् १६८७ माण्डवगढ़ में श्री जहांगीर ने इनको महातपा बिरुद प्रदान किया था।

इन्हीं के कार्यकाल में विजयदेवसूरि एवं विजयआनन्दसूरि शाखाभेद हुआ। श्रीदर्शनविजयजी ने विजयतिलकसूरि रास में जिस घटना का वर्णन किया है, वह विचारणीय अवश्य है। खरतरगच्छीय श्री ज्ञानविमलोपाध्याय के शिष्य श्री श्रीवल्लभोपाध्याय ने तो इसका संकेत मात्र ही किया है और सम्भवतः इनकी कीर्ति से प्रभावित होकर श्री वल्लभोपाध्याय ने विजयदेवमाहात्म्य रचा था। संवत १६८७ के पश्चात् किसी घटना का उल्लेख नहीं है। इसी वर्ष इस माहात्म्य को पूर्ण कर दिया। स्तम्भनतीर्थ, इलादुर्ग, घोघाबन्दर, द्वीप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरोही, माण्डवगढ़, मेडता आदि अनेक स्थानों पर आचार्यश्री ने प्रतिष्ठा करवाई थी। इन्हीं के उपदेश से जाबालीपुर (जालोरदुर्ग) तीर्थ पर विशाल चैत्य का निर्माण, प्रतिष्ठादि हुए थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित, लेख सहित, शताधिक मूर्तियाँ आज भी प्राप्त हैं। विजयदेवसूरि के पट्टधर विजयसिंहसूरि हुए ,जिनका जन्म १६४४, दीक्षा १६५४, वाचकपद १६७२ और सूरिपद १६८१ में प्राप्त हुआ था। स्वर्गवास १७०९ में हो गया था। किसनगढ़ के दीवान श्री रायसिंहजी-निर्मापित का चिन्तामणी पार्श्वनाथ मन्दिर आज भी इनका स्मरण करवा रहा है। स्वरूपट्टधर आचार्य विजयसिंहसूरि का स्वर्गवास होने पर श्री विजयदेवसूरि ने उनके पट्ट पर विजयप्रभसूरि को बिठाया था।

सिद्धिविजय रचित विजयदेवसूरि भासद्वय का संक्षिप्त परिचय :

महीमण्डल के राजवी श्री विजयदेवसूरि यहाँ पधारे हैं। सब उनको नमस्कार कर रहे हैं। उनको वन्दन करने के लिए चलें। दूसरे पद्य में सोलह शृंगारों से सुशोभित महिलाएँ भाल पर तिलक कर, मोतियों का थाल लेकर उनके स्वागत के लिए चलीं। गुरु के सन्मुख कुमकुम, केसर, केवडा के साथ घोल बनाकर गुरु के सन्मुख रंगोली करती हैं। चौथे पद्य में सभी सोहागिनी सुन्दर स्त्रियाँ नवरंग वस्त्र धारण कर एक किनारे खड़ी होकर गुरुजी के गुणगान कर रही हैं। सिद्धिविजय कहता है कि विजयदेवसूरि का नाम निरन्तर गाने से शिवपद प्राप्त होता है।

दूसरे भास में - सरस्वती को नमस्कार कर कवि गुरु विजयदेवसूरिन्द के गीत गाने की प्रतिज्ञा करता है, जिस प्रकार चन्द्र को देखकर चकोर हर्षित होता है उसी प्रकार आचार्य को देखकर आनन्दित होते हैं और उनके चरणों में गुरुवन्दन करते हैं। दूसरे पद्य में विजयदेवसूरि मुनियों में चन्द्रमा के समान हैं, और कुमतियों को समूल नष्ट करने वाले हैं। बाल्यावस्था में जिन्होंने संयम धारण किया और गुरु के पास में शुद्धाचार का पालन किया ऐसे आचार्य हमें भवसागर में डूबते हुए भवियों के तारणहार हैं। तीसरे पद्य में सुमति-गुप्ति रूपी रमणियों के साथ रमण करने वाले हैं, इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, मुनियों के ताज हैं। जिनकी दन्तपंक्ति सोने की मेख से जटित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । उनको देखकर मन उल्लसित होता है, ऐसे गुरु मुझे मिले है। भवसमुद्र के फेरे से बचाने वाले हैं, सिद्धिविजय कहता है कि जब तक पृथ्वी है तब तक इनकी यशोकीर्ति बढ़ती रहे ।

(१) श्री विजयदेवसूरि भासद्वय

सहगुरु आव्या मइं सुण्या रे चाली सखी एक बार ।
महीमण्डल नउ राजीउ रे प्रणमइं सुर नर नारि रे ॥
बहिनी वन्दीजइं गुरुराज ॥ १ ॥

जिम सीझई सघला काज रे बहिनी वन्दीजइं गुरुराज ॥
सोल शृंगार सोहावती रे लावती मोतिनउ थाल ।
भाल तिलक रलियामणो रे भामणउ भगती रसाल रे ॥ ब. २ ॥

कुमकुम केसर केवडउ रे कीजउ बहुल उद्योत ।
चोल तणी परि रातडउ रे गुर आगइं रंगरोल रे ॥ ब. ३ ॥

सवि सोहासणी सुन्दरी रे ऊभी एकणि तीर ।
गुण गावइं गुरुजी तणा रे पहिरी नवरंग चीर रे ॥ ब. ४ ॥
श्री विजयदेवसूरिसरु रे **सिद्धिविजय** नउ सामि ।
नाम निरन्तर गाईइं रे पाईइं सिवपद ठाम रे ॥ ब. ५ ॥

इति श्री विजयदेवसूरीश्वर भास समाप्त

(२) श्रीविजयदेवसूरि भास

सुरसति मात नमी करी गुण गासुं रे **विजयदेवसुरिंद** रे ।
चंद चकोर तणी परि जस दीठइं रे होवइ आणंद रे ॥
चरण कमल गुरु वन्दउ रे ॥ १ ॥

मुनिचन्दउ रे विजयदेवसूरीन्द, प्रभु टालइरे कुमत्यां ना कन्द ।
चरण कमल गुरु वन्दउ रे ॥ आंकणी
बालपणइ जिणइं आदरु गुरु पासइं रे रुडउ संयमभार ।
भवसायर मांहि बूडंता भविअण नइ रे ऊतारणहार ॥ च. २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमति गुपति रमणी रमइं वली जे दमइं रे इंद्री ।
मुनिताज काज सरइं दरिसन थकां गुर आपइं रे शिवपुर नऊ राज
॥ च. ३ ॥

दन्ति पन्ति हीरे जड़ी सोवन घडी रे विचइ रुड़ी रेख ।
पेखि सखि मनि उलसइं कमलाकर रे जिम सूरज देखी ॥ च. ४ ॥

सोभागी मुझ मलउ सखि तउ टलउ रे भवसागर फेर ।
सिद्धिविजय कहइं तां तपउ गुरु माहरु रे जिहां महियल मेर ॥ च. ५ ॥
मुनिचंदउ रे विजयदेवसुरीन्द ॥

इति श्री विजयदेवसूरीश्वर भास समाप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि भास

म. विनयसागर

सद्गुरु आचार्यों और गीतार्थप्रवरों के गुणगौरव का यशोगान और स्तुति करना यह साधुजनों का कर्तव्य है। जो कि गीत, भास, स्तुति, रास, इत्यादि के रूप में प्राप्त होते हैं। गुरुगुण-षट्पद, जिनदत्तसूरि स्तुति, साहरयण कृत जिनपतिसूरि धवल गीत, कवि भत्तउ रचित जिनपतिसूरि गीत, पहराज कृत जिनोदयसूरि गुण वर्णन, कविपल्ह कृत जिनदत्तसूरि स्तुति, नेमिचन्द्र भण्डारी रचित जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन, सोममूर्ति रचित जिनेश्वरसूरि-संयमश्री विवाह वर्णन, मेरुनन्दन रचित जिनोदयसूरि विवाहलउ आदि १२वीं शताब्दी के अनेकों कृतियाँ प्राप्त होती हैं। इसी शृंखला में अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि से सम्बन्धित भास और गीत संज्ञक लघु चार रचनाएँ स्फुट पत्र में प्राप्त है। श्री जयकेसरीसूरि १५ वीं के अञ्चलगच्छीय प्रभावक आचार्य हुए हैं। श्री अञ्चलगच्छ की स्थापना आर्यरक्षितसूरि के द्वारा संवत ११६९ में हुई है। इसी आर्यरक्षितसूरि की परम्परा में श्री जयकेसरीसूरि हुए हैं। जिनकी वंशपरम्परा इस प्रकार हैं :-

आर्यरक्षितसूरि
|
जयसिंहसूरि
|
धर्मघोषसूरि
|
महेन्द्रसिंहसूरि
|
सिंहप्रभसूरि
|
अजितसिंहसूरि
|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवेन्द्रसिंहसूरि
|
धर्मप्रभसूरि
|
सिंहतिलकसूरि
|
महेन्द्रप्रभसूरि
|
मेरुतुङ्गसूरि
|
जयकीर्तिसूरि
|
जयकेसरीसूरि

इस प्रकार आर्यरक्षितसूरि की परम्परा में बारहवें पाट पर इनका स्थान पाया जाता है ।

श्री जयकेसरीसूरि के सम्बन्ध में **प्रयोजक पार्श्व ने अञ्चलगच्छ दिग्दर्शन** नामक पुस्तक में पृष्ठ २६७ से २९८ पर विस्तार से प्रकाश डाला है । इसी पुस्तक के आधार पर प्रमुख-प्रमुख घटनाओं का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं ।

इनका जन्म पाञ्चाल देशान्तर्गत थाना नगर में विक्रम संवत् १४६१ में हुआ । इनके पिता श्रीपाल के वंशज श्रेष्ठि देवसी थे और माता का नाम लाखणदे था । किसी पट्टावली में जन्म संवत १४६१ प्राप्त होता है तो किसी में १४६९ । इनका जन्मनाम धनराज था । माता द्वारा केसरीसिंह का स्वप्न देखने के कारण दूसरा नाम केसरी भी था । संवत १४७५ में जयकीर्तिसूरि के पास आपने दीक्षा ग्रहण की और दीक्षा नाम जयकेसरी रखा गया । संवत १४९४ में जयकीर्तिसूरि ने आपको आचार्य पद प्रदान कर जयकेसरीसूरि नाम रखा । भावसागरसूरि के मतानुसार चांपानेर नरेश गङ्गदास के आग्रह से इनको आचार्य पदवी दी गई थी । जयकेसरीसूरि भास में **रंजण गंग नरिन्द** प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। संवत १५०१ में चाम्पानेर में आपको गच्छनायक पद प्राप्त हुआ और संवत् १५४१ पोस सुदी ८ के दिन खम्भात में इनका स्वर्गवास हुआ।

चांपानेर नरेश गङ्गदास तो इनके भक्त थे ही, गङ्गदास के पुत्र जयसिंह पताई रावल भी इनका भक्त था। लावण्यचन्द्र की पट्टावली के अनुसार सुलतान अहमद (महम्मद बेगडा) भी आपके चमत्कारों से प्रभावित था। सायला के ठाकुर रूपचन्द और उनके पुत्र सामन्तसिंह ने जीवनदान पाकर जैन धर्म स्वीकार किया था। जम्बूसर निवासी श्रीमाल कवि पेथा भी आपके द्वारा प्रतिबोधित था।

आपके द्वारा विक्रम संवत् १५०१ से लेकर १५३९ तक २०० के लगभग प्रतिष्ठित मूर्तियाँ प्राप्त होती है। जयकेसरीसूरि की २ ही कृतियाँ प्राप्त होती हैं :- १. चतुर्विंशति-जिन-स्तोत्राणि और २. आदिनाथ स्तोत्र। चतुर्विंशति-जिन-स्तोत्राणि मेरे द्वारा सम्पादित होकर आर्य जयकल्याण केन्द्र, मुम्बई से विक्रम संवत २०३५ में प्रकाशित हो चुकी है। इस कृति को देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि जयकेसरीसूरि प्रौढ़ विद्वान थे।

उनकी गुण गाथा को प्रकट करने वाली अनेकों कृतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। मुझे केवल चार कृतियाँ ही प्राप्त हुई, जो कि एक ही पत्र पर लिखी हुई हैं। लेखन संवत् नहीं है किन्तु लिपि को देखते हुए १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी गई हो ऐसा प्रतीत होता है।

प्रथम कृति भास के रूप में है, जिस में श्री जीराउली पार्श्वनाथ को नमस्कार कर अञ्चलगच्छ नायक जयकेसरीसूरि के माता-पिता का नामोल्लेख है। इसी के पद्य ५ में रञ्जण गङ्ग नरिन्द्र का उल्लेख भी है। दूसरी भास नामक कृति **कवि आस** की रचित है। नगर में पधारने पर विधिपक्षीय जयकेसरीसूरि का वधावणा किया जाता है, और संघपति महिपाल जयपाल का उल्लेख भी है। तीसकी कृति गीत के नाम से है। इसके प्रणेता **हरसूर** हैं, और इसमें जयकीर्तिसूरि के पट्टधर जयकेसरीसूरि के नगर प्रवेश का वर्णन किया गया है। चौथी कृति भास नामक है। इसके प्रणेता **हरसूर** हैं, जिसमें श्राविकाएँ नूतन शृङ्गार कर जय-जयकार करती हुई, मोतियों का चौक पुराती हुई, उनका गुणगान करती हैं, आचार्य को देखकर नेत्र सफल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए हैं । इक्षु, दूध-शक्कर, के समान आचार्य-वाणी को उपमा प्रदान की गई है । आचार्य को जङ्गम गुरुओं में गोयम गणधर, शील में जम्बूकुमार, मुनीश्वरों में वज्रकुमार आदि की उपमा देते हुए गुरुगुण से पाप भी पलायन कर जाते हैं, ऐसा उल्लेख है । भक्तजनों के आल्हाद के लिए चारों लघु कृतियाँ प्रस्तुत हैं :-

अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि भास

(१)

श्री जीराउलि पास पूरई रे मनची आस ।
आणीय मनि उल्लास पणमिय जिनवर पास ॥
सखि गाइसिउं ए अञ्चलगच्छ नरिंद
अईया गाइसिउंए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥१॥

लाखणदेविउं दार जाईउ सुत सविचार
धन धन राजकुमार आदरिउ सूरिपयभार ।
वंदिसिउं ए श्री जयकेसरिसूरि
अईया वंदिसिउं ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥२॥

देवसीयसाह मल्हार, अञ्चलगच्छ सिणगार
पूरव रिषि आचार, पालइं ए निरतीचार ।
सखि गाजइ ए गणहर मुणिवर थाटि
अईया गाजइ ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥३॥

गुरु गोयम अवयार, शासन तणउ आधार
जाणइ सयल विचार, गुरुयडि गुण भंडार ।
सखि दीपइ ए दसदिसि कीरति जास
अईया दीपई ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥४॥

गुरु मुख पूनिम चंद, दीठइ परमाणंद
रंजण गंगनरिंद, सेव करइं सूरिंद ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सखि प्रतपउ ए अम्ह गुरु जां जगि सूर
अईया प्रतपउ ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥५॥

इति श्री गुरु भास

(२) कविआस प्रणीत

आज घरि घरिइं वधामणां, हरख लइ चतुर्विध संघ ए ।
आरे श्री विधिपक्ष गच्छनायक, जयवंत **जयकेसरिसूरिंद** रे ॥
मिलउ सहेली सुगुरु तणा गुण गाउ ए ।
कनक थाल मोतीडां भरि जयकेसरिसूरि वधावउ रे ॥१॥
॥ मिलउ सहेली, आंचली ॥

जिम तारायण चांदलउ, तिम मुखि अमीय झरंतू ए ।
सूरि श्रीजयकेसरिसुगुरु अम्ह तरणि परि तपंतू रे ॥ २ ॥ मिलउ सहेली ॥

सुललित वाणी सुणींजइ, श्रवणि अमीरस पीजइ रे ।
श्रीजयकेसरिसूरि तरणतारण सिरि लुंछणडां करीजइ रे ॥ ३ ॥ मिलउ सहेली ॥

आस भणति अईसा सुगुरु तुम्ह जयउ संघपति **आसधीर** तनू रे ।
संघपति **महिपाल जयपाल,** जयकेसरिसूरि प्रसन्नू रे ॥ ४ ॥ मिलउ सहेली ॥

(इति) श्री गुरु भास

(३) हरसूर प्रणीत

ऊलट अंगि अपार कामिनि करउ सिणगार
मोतीय थाल भरी वधावउजी ।
सही ए अम्ह सुहगुरु आईला श्रीजयकेसरिसूरी । सही ए. ॥ १ ॥ आ. ।

अहव सूहव आवउ माणिक चउक चूरावउ ।
गच्छनायक गुण गाउजी । सही ए. ॥ २ ॥
जयकित्तिसूरि पाटोधर कलि गोयम अवतार ।
तरणतारण पाय सेवउजी । सही ए. ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरसूर भणइ सुवचन **साह देवसी** तन ।
धन संघ प्रसन्नूजी । सहीए. ॥ ४ ॥

(इति) श्री गुरु गीत

(४)

चालि सही गुरु वंदीइ पहिरी नव सिणसार ।
गछनरेसर भेटीइ, जिम हुई जय जयकार ॥

वेगि वधावउ रे सुंदरी, मोती चउक पूरेवि ।
सूरीसर जयकेसरी, अविहड भाव धरेवि ॥ १ ॥ वगि वधावउ रे ।

जई गुरु दीठा आपणा, चतुर पणइ चउसाल ।
सफल हूंया अम्ह लोयणा आज सफलिउ सुरसाल ॥ २ ॥ वेगि. ।

स्वाद पणइ जिसी सेलडी, जाणे साकर दूध ।
कईहो मोहणवेलडी, वाणी अमी यति सूध ॥ ३ ॥ वेगि. ।

सरस सुकोमल सीयली, सुणतां सविहुं सुहाई ।
वाणी अम्ह गुरु केतली, ऊपम कहणि न जाइ ॥ ४ ॥ वेगि. ।

सारद ससिकर निरमलउ, खीरोदधि सम वान ।
दीपइ दहदिसि ऊजलु, जगि जस मेरु समान ॥ ५ ॥ वेगि. ।

जंगम गोयम गणहरु, सीलिइं जंबुकुमार ।
सोहगवई वरमुणीसरु, विद्या वइरकुमार ॥ ६ ॥ वेगि. ।

जे गुण गाइं गुरु तणा, आणी हृदय विवेक ।
पातक जाइं तेह तणां, पामइं भोग अनेक ॥ ७ ॥ वेगि. ।

इति श्री पूज्य भास

प्राकृत भारती अकादमी
१३-अे, मेन मालवीयनगर, जयपुर-३०२०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फ़्राँस में जैन धर्म व साहित्य

स्वर्गीय प्रोफ़ेसर डाक्टर श्रीमति कौलेट काइया का योगदान

१५-१-१९२१ - १५-१-२००७

श्रद्धाञ्जलि

नलिनी बलवीर

फ़्राँस में जैन धर्म प्रचलित धर्म नहीं है। भारतीय प्रवासियों की संख्या यहा सीमित है और उनमें जैनियों का भाग कम है। इंगलैंड और अमेरिका की तरह अभी तक यहाँ जैन मन्दिर भी नहीं हैं। पर विशेषज्ञों के कृतित्व के कारण जैन धर्म और साहित्य भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग माना जाता है और विश्वविद्यालयों में उनका अध्ययन और अध्यापन होता है। बीसवीं शती के आरम्भ में फ़्रांसीसी विद्वान गेरिनो (Guérinot) ने इस विषय पर संशोधनक्रिया की। तत्कालीन पश्चिमी देशों के गेरिनो समान विद्वानों ने आचार्य श्रीविजयधर्मसूरि (1868-1922) के साथ पत्रव्यवहार किया था[1]। पिछली शती के विश्वविख्यात भारतीयज्ञ इण्डोलोजिस्ट प्रोफ़ेसर लुई रनु (Louis Renou, 1896-1966) जैन धर्म व साहित्य के विशेषज्ञ नहीं थे फिर भी उनका जैनिज़्म *(Jainism)* नामका लेख आज भी प्रशंसनीय है[2]। भारत के यात्रा के समय १९४८ प्रोफ़ेसर रनु की तेरापन्थी आचार्य श्रीतुलसी (1914-1997) से भेंट हुई। इन आचार्य के व्यक्तित्व और तेरापन्थ संघव्यवस्था से बहुत प्रभावित होकर प्रोफ़ेसर रनु ने रिपोर्ट जैसा एक लेख प्रकाशित किया जो पश्चिम में तेरापन्थ के विषय पर सब से प्रथम था[3]।

1. A.J. Sunavala, *Vijaya Dharma Suri. His Life and Work,* Cambridge, 1922; Colette Caillat & Nalini Balbir, Jaina Bibliography. Books and Papers published in French or by French scholars from 1906 to 1981, *Sambodhi* 10, April 1981, pp. 1-41.
2. In : *Religions of Ancient India,* London, 1953; reprint, Delhi, Munshiram Manoharlal, 1971.
3. Louis Renou, Une secte religieuse dans l'Inde contemporaine, *Etudes,* 268, 1951, pp. 343-351; English version: A Religious Sect in Contemporary India, *Eur-Asia,* Calcutta, 6, 1-2, January February 1952, pp. 1663-1666 and 1675.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रोफ़ेसर डाक्टर कौलेट काइया (Colette Caillat) ने पाश्चात्य परम्परा को सजीव रखा और अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से निरन्तर विकसित किया। गुणग्राह्यता तथा जैन साहित्योपासना दोनों ही दृष्टियों से श्रीमती काइया का जीवन आदर्श विदुषी और महिला का जीवन रहा है। उनका जन्म पेरिस के पास एक छोटे शहर में १५ जनवरी १९२१ में हुआ और अपनी छियासवी वर्षगांठ के दिन १५ जनवरी २००७ में उनका देहावसान हो गया।

उनके माता पिता दोनों सरकारी नौकरी करते थे। उनका पूरा विश्वास था कि लडकियों का जीवन भी वैयक्तिक वेतन के बिना नहीं चल सकता। नियमित कार्यवाही से ही स्त्री को स्वतन्त्रता मिल सकती है। आरम्भ में श्रीमती काईया ने सोर्बोन विश्वविद्यालय में लैटिन व ग्रीक योरोपीय शास्त्रीय भाषाओं का अध्ययन किया। इन विषयों की उच्चतम परीक्षाओं में सफलता के बाद उन्होंने माध्यमिक शिक्षालयों में अध्यापन किया। इसी बीच श्रीमती काइया का विवाह एक भौतिक वैज्ञानिक से हुआ।

पढाते-पढाते उन्होंने सोर्बोन विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं का अध्ययन प्रारंभ किया। इस समय लैटिन व ग्रीक भाषाओं के विद्यार्थियों को ज्ञान हुआ कि इन भाषाओं का संस्कृत से पास का सम्बन्ध है। परिणामस्वरूप वे भी भारतीय शास्त्रीय भाषा संस्कृत की ओर आकृष्ट हुए। यद्यपि ऐसे विद्यार्थियों की संख्या सीमित रही है। प्रोफ़ेसर लुइ रनु और प्रोफ़ेसर जूल ब्लोक (Jules Bloch, 1880-1953) श्रीमती काइया के दो मुख्य गुरु थे। प्रोफ़ेसर ब्लोक के विद्यार्थी न केवल संस्कृत बल्कि पालि-प्राकृत तथा मराठी भाषाएं भी सीखते थे। इसी प्रकार श्रीमती काइया की रुचि भी भारतीय भाषाओं में बढती गई। पाली-प्राकृत नामव्युत्पत्ति के विषय पर उन्होंने संशोधन प्रारम्भ किया। किन्तु जैन धर्म से परिचित बिना प्राकृत साहित्य कौन पढ सकता है। उस समय फ़्राँस में जैन धर्म का विशेषज्ञ न होने के कारण प्रोफेसर रनु ने श्रीमती काइया को हैमबुर्ग विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर वाल्टर शूब्रिंग (Walther Schubring, 1881-1969) के पास अध्ययनार्थ भेज दिया। प्रोफ़ेसर शूब्रिंग जैन आगम साहित्य और प्राकृत विद्या के शीर्षस्थ विद्वान थे। विशेषतः वे आचाराङ्गसूत्र, सूत्रकृताङ्गसूत्र तथा छेदसूत्रों का अध्ययन, अनुवाद व सम्पादन करते थे। हैमबुर्ग में ही श्रीमती काइया प्रोफ़ेसर अल्स्दोर्फ (Ludwig Alsdorf, 1904-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1978) के सम्पर्क में भी आयीं । उन्हीं की प्रेरणा से वे क्रिटिकल् पालि डिक्शनरी के काम में भी सहयोग देने लगीं । सन् १९६५ में उनका डी. लिट्. उपाधि का निबन्ध पूरा हो गया था और फ्रांसीसी भाषा में पुस्तकरूपमें छपा था। छेदसूत्रों के आधार पर (विशेषतः व्यवहारसूत्र एवं भाष्य के आधार पर) जैन साधुसंघ की व्यवस्था का वर्णन बडी स्पष्टता से इस पुस्तक में दिया गया है । और विस्तार से दस प्रायश्चित्तों का गहन विश्लेषण किया गया है । इस अपूर्व अध्ययन की ख्याति के कारण श्रीमती काइया जैन धर्म व साहित्य की विशेषज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित हुई । सन् १९७५ में इस मूलभूत ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर अहमदाबाद की ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ[4] । व्यवहारसूत्र के अध्याय का फ्राँसीसी अनुवाद इस ग्रन्थ का परिशिष्ट माना जा सकता है[5] । उनका अन्य प्रमुख ग्रन्थ 'जैन कौस्मोलोजी' जैन धर्म और साहित्य क्षेत्र की अद्वितीय कृति है[6] । श्रीमती काइया ने श्वेताम्बर आगमों के प्रकीर्णक ग्रन्थों के विषय में भी बहुमूल्य योगदान दिया । उन्होंने चन्दावेज्झय प्रकीर्णक का भी सम्पादन, अनुवाद एवं भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया[7] । इसके अतिरिक्त प्रकीर्णकों में विशेषतया वर्णित सल्लेखना तथा मरणसमाधि पर उन्होंने विविध शोधपत्र प्रकाशित किए[8] ।

---

4. C. Caillat, *Atonements in the Ancient Ritual of the Jaina Monks*, Ahmedabad, 1975.
5. In : W. Schubring, C. Caillat, *Drei Chedasūtras des Jaina-Kanons, Āyāradasāo, Vavahāra, Nisiha*, Hamburg, 1966.
6. C. Caillat, Ravi Kumar, *Jain Cosmology*, New Delhi, 1981; new edition, Ravi Kumar Publisher, New Delhi, 2004.
7. *Candāvejjhaya*, La Prunelle-Cible. Paris, De Boccard, 1971.
8. Fasting unto Death according to Āyāranga-sutta and to some Paiṇṇas, *Mahāvira and his Teachings* (ed. A.N. Upadhye *et alii*), Bombay, 1977, pp. 113-118; Interpolations in a Jain Pamphlet or the Emegence of one more Āturapratyākhyāna, *Wiener Zeistschrift für die Kunde Südasiens*, 36, 1992, pp. 35-44; On the Composition of the Śvetāmbara Tract *Maraṇavibhatti/Maraṇasamāhi-Paṇṇayaṃ, Jain Studies*, Delhi, Motilal Banarsidass, 2008; etc. For a bibliography of C. Caillat's works, see *Bulletin d'Etudes Indiennes* 22-23, 2004-2005, published in 2007 and *Indologica Taurinensia* (forthcoming), or contact - nalini.balbir@wanadoo.fr

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् १९६२-१९६३ में अनेक व्यक्तियों व भारत सरकार के उत्साहन और सहायता से श्रीमती काइया को भारत यात्रा का सर्वप्रथम अवसर प्राप्त हुआ। तब से ही वे भारत के जैन धर्म के प्रमुख विद्वानों के सम्पर्क में आयीं। अहमदाबाद में लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के निदेशक पण्डित दलसुखभाई मालवणिया (1910-2000) और उनके परिवार के साथ श्रीमती काइया की घनिष्ठता हो गई। उनके वात्सल्य के वातावरण में श्रीमती काइया ने पूर्णतया लाभ उठाया। प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी संघवी (1880-1978) की सरलता और गम्भीरता से भी वे अत्यन्त प्रभावित हुई। प्रोफेसर हरिवल्लभ भायाणी (1917-2000) के साथ प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं पर विशेष चर्चा होती। आगमप्रभाकर आचार्य श्रीपुण्यविजयजी (1895-1971) के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का उन पर अत्यन्त प्रभाव पडा। उन्होंने फ्राँसीसी पाठको के लिए मुनिजी की जीवनकथा का वर्णन किया। अन्तिमवर्षों में आचार्य श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी महाराज से भेंट होने के बाद से उनका दर्शन पाना श्रीमती काइया के लिए अनिवार्य था। दिगम्बर विद्वानों के साथ भी उनका बहुत अच्छा सम्पर्क रहा। वे डाक्टर आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (1906-1975) को अपना भारतीय गुरु मानती थीं। उन्हीं के साथ रामसिंहकृत दोहापाहुड तथा जोइन्दुकृत परमात्मप्रकाश पढकर श्रीमती काइया ने अपभ्रंश के इन दोनों पावन ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित किया[9]। सन् १९८१ में उन्होंने भारतवर्ष के बाहर सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन का आयोजन किया और पण्डित दलसुखभाई माल्वणिया तथा प्रोफेसर नथमल टाटिया को आमन्त्रित किया[10]।

सन् १९४२ से १९५० तक श्रीमती काइया राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसन्धान केन्द्र के अधीन गवेषणा करती रहीं और तत्पश्चात् उनका सारा बौद्धिक जीवन विश्वविद्यालय की सेवा में अर्पित हो गया। पहले वे ल्यों (Lyon) नगर

9. The Offering of Distics (*Dohāpāhuḍa*) : *Sambodhi* 5, 1976, pp. 176-199; *Lumière de l' Absolu [Yogindu's Paramātmaprakāśa]*, Paris, Payot, 1999.

10. *Proceedings of the International Symposium on Jaina Canonical and Narrative Literature*, Torino, 1983.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के विश्वविद्यालय में १९६०-६६ संस्कृत और तुलनात्मक व्याकरण की शिक्षा देती थीं। सन् १९६६ में प्रोफ़ेसर् रनु के आकस्मिक निधन के बाद वे सोर्बोन विश्वविद्यालय में भारतविद्या की प्रोफ़ेसर नियुक्त हुईं और १९८९ तक सेवानिवृत्त होने के समय तक इस पद पर बनी रहीं। दर्जनों विद्यार्थियों को उन्होंने भारतीय संस्कृति और पालि-प्राकृत भाषाओं की शिक्षा दी और भारतीयपरता का पथप्रदर्शन किया। विविध छात्रों को पी.एच.डी. की शोध उपाधि के लिए निर्देशन किया।

प्रोफ़ेसोर् श्रीमती काइया ने विश्व के विविध धर्मसम्बन्धी प्रकाशनों मे अनेक निबन्धों और प्रकृतिविषयक जैन घोषणा के अनुवाद से फ़्राँस की सामान्य जनता को जैन धर्म से अवगत किया। उस क्षेत्र की अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ होने के नाते फ़्राँस के बाहर भी प्रकाशित विश्वकोशों और सामान्य ग्रन्थों में उन्होंने अनेक लेख प्रकाशित किए। उदाहरणतः देखिए कौलेट काइया, ए. एन. उपाध्ये और बाल पाटिल द्वारा प्रकाशित जैनिज़्म् (*Jainism;* देहली १९७४-७५)

भारत विद्या के विविध विषयो पर प्रकाशित पुस्तकों की समर्थक और उदारतापूर्ण समालोचना करना श्रीमती काइया के कृतित्व का महत्वपूर्ण भाग था। फ़्राँस की एसियाटिक् सोसाइटी की पत्रिका में (*Journal Asiatique*) उन्होंने नियमित रूप से महत्वपूर्ण ग्रन्थसूचियों के संकलन प्रकाशित किए। जर्मन विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर वाल्टर शूब्रिंग और भारतीय विद्वान मुनि पुण्यविजयजी के देहावसान पर उन्होंने महानुभावों पर मार्मिक लेख छापे।

विद्वत्ता, कर्तव्यपरायणता और सरल स्वभाव के कारण श्रीमती काइया शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रसिद्ध हो गयीं। भारत के जैन संस्थानों और विदेशी संस्थानों में सम्मान पुरस्कारों से अलंकृत हुईं।

श्रीमती काइया का जीवन और अथक शोध कृतित्व जैन धर्म और साहित्य के ही नहीं अपितु विश्वसेवापरक स्वभाव मानवता के निरन्तर आदर्श रहेंगे।

C/o. सोर्बेन नुवेल विश्वविद्यालय
पेरिस, फ़्राँस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन

उपा. भुवनचन्द्र

'जैन आगमोमां मांसाहार' ए विषय पर आजथी सोएक वर्ष पूर्वे चालेली चर्चाना बे-त्रण लेख अनु.ना ४१मा अंकमां प्रगट थया छे. जेमां एक बाजू जर्मन प्रो. हर्मन जेकोबीनी विद्वत्ता देखाई आवे छे तो बीजी बाजू जैनाचार्योनी आहारविषयक मीमांसा दृढ स्वरूपे तरी आवे छे. प्रो. जेकोबीए आचाराङ्ग सूत्रना तेमना जर्मन अनुवादमां केटलाक आलापक अने शब्दोना मांसपरक अर्थ कर्या हता, जेना प्रत्याघात / परिहार रूपे पं. गम्भीरविजयगणी अने मुनि नेमिविजय (विजयनेमिसूरि) - मुनि आनन्दसागर (सागरानन्दसूरि)ना पत्रो / लेखो अने डो. जेकोबीनो संस्कृत पत्र वगेरे सामग्री संकलित रूपे अहीं मूकाई छे. आ सामग्रीमांथी उपसी आवती विचारणीय-प्रेरक वातो सम्पादकश्रीए भूमिकामां तारवी आपी छे. आगमना अमुक शब्दोना अर्थ परत्वे जैन आचार्यो / विद्वानोमां प्रवर्तता बे भिन्न अभिप्रायो पाछळनी अपेक्षाओ समजावी छे. पं. गम्भीरविजयजी तेमना लेखमां आगमिक शब्दोना वनस्पतिपरक अर्थ करनार पार्श्वचन्द्रसूरिने उत्सूत्रभाषी अने असत्यभाषी कहे छे. तेमां अन्यनी अपेक्षाने समझवा स्वीकारवानी तत्परता खूटती लागे. पार्श्वचन्द्रसूरिए आचाराङ्ग स्तबकमां आ सन्दर्भमां लखेला उद्गार अहीं जोइए : इहां वृत्तिकारइं लोकप्रसिद्ध मांस-मच्छादिकना भाव वखाण्या छइं परं सूत्रस्यउं विरुद्ध थकी ए अर्थ इम न संभवइ, पछे वली श्रीजिनमतना जाण श्रीगीतार्थ जे अर्थ करइं ते प्रमाण... ''अस्थिनइं शब्दिइं 'कुलिया' - गुठली बोली छइ, मंस शब्दिइं मांस - मांहिलउ गिर संभावीयइ छइ ...'' ''वृत्ति मांहि अपवादमार्ग कह्यो छइ'' - आ विधानोमां अनाग्रह अने सापेक्ष दृष्टि तरवरी रहे छे, ते ध्यानमां न लेतां उत्सूत्रभाषी, असत्यभाषी जेवां विधानो थाय तो ते पूर्वग्रहनुं ज परिणाम होई [१]शके. संशोधन क्षेत्रमां पूर्वग्रह, पक्षीय दृष्टिथी बचवुं आवश्यक छे ए ज आ निरीक्षणनो सार छे.

स्याद्वादकलिका नामक कृति अभ्यासनी सामग्री लेखे नोंधपात्र छे. अनु. ४२मां आ कृति पूर्वे प्रकाशित थयानी नोंध मूकाई छे, तेम छतां आ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतिनी भूमिकामां सूचित संशोधनो अगत्यनां छे. द्रव्यषट्के (श्लो.३९) ना स्थाने दृष्टिषट्के एवो सुधारो सूचवायो छे ते महत्त्वनो छे. श्लो. ३७मां दीप (पि)का एम सुधारो सूचवायो छे ते थोडो विचारप्रेरक छे. हस्तप्रतिमां स्याद्वाददीपका एवो पाठ मळे छे अने आ अन्तिम श्लोक नथी - ए हकीकतने ध्यानमां लेतां आ शब्द कृतिनुं नाम सूचवतो होय एवुं फलित नथी थतुं. श्लोकगत सन्दर्भने जोतां स्याद्वाददीपकाः एवो पाठ यथार्थ जणाय छे. कर्ता कृतिना उपसंहार रूपे "आ बधां स्याद्वादना दीपक प्रयोगो-उदाहरणो छे." - एम कहेता जणाय छे. आथी वस्तुतः पुष्पिकामां दर्शित स्याद्वादकलिका ज कृतिनुं मूळ नाम होवाथी संभावना विशेष छे. स्याद्वाददीपिका नाम भ्रमवश कल्पी लेवामां आव्युं जणाय छे.

निगोदथी मोक्ष सुधी नामक लेख निगोदना विषयमां अनेक बिन्दुओ तुलनात्मक रीते रजू करे छे. डॉ. पद्मनाभ जैनीना एक लेखनो आ सारानुवाद छे. अनुवाद सुवाच्य छे. अंग्रेजी साहित्यमांथी विशिष्ट सामग्री आ रीते गुजराती विगेरे भाषाओमां अनूदित थाय ए अनेक दृष्टिए इच्छनीय छे.

अनु.४२ नी प्रथम अने प्रकृष्ट कृति 'श्रीपञ्चसूत्र स्तबक' आ महान शास्त्र पर रचायेली गम्भीर कृति तरीके, एक श्रावकनी कृति तरीके, कच्छ अने कोडाय गामे थयेली सदागम प्रवृत्ति ना एक प्रदानना स्वरूपे- एम विविध रीते विशिष्ट छे. कोडाय गाम कच्छना काशी तरीके विख्यात थयुं एना मूळमां श्रीहेमराज भीमशी नामना संशोधक विद्वाने त्यां स्थापेल ज्ञानभण्डार, 'सदागम प्रवृत्ति' नामे ज्ञानवर्धक संस्था तथा 'अवठंभशाळा' अर्थात् निवासी विद्यालय हता. आ शाळामां अनेक स्त्री-पुरुषो जैन शास्त्रो तथा संस्कृत प्राकृतनुं शिक्षण पाम्या हता. एमांना एक श्रीवेलजी भारमल हता. एमना हस्ते लखायेली अनेक प्रतिओ जोवा मळे छे. एमनी स्वतन्त्र कृति आ सर्वप्रथम प्रकाशित थई छे. वेलजीभाईनी विद्वत्ता तथा शास्त्रीय विषयमां गति केवा उच्च स्तरना हता तेनां दर्शन आ रचनामां थाय छे.

सम्पूर्ण टबो हारिभद्रीय टीकाना आधारे लखायो छे. टबामां श्लोको छे ते पण ए टीकामां उद्धृत थयेला श्लोको ज छे. विशेष अभ्यासीओ माटे टीकाकारे टीकानी पंक्तिओ वच्चे वच्चे उद्धृत करी छे. टीकाना आधारे मूळ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रनो अनुवाद जे रीते सरल - सुबद्ध थयो छे तेमां कर्तानी विद्वत्ता तथा मौलिकता जणाई आवे छे.

म. विनयसागरजीए केटलीक लघु कृतिओ विस्तृत भूमिका साथे सम्पादित करी छे. नानी छतां नोंधपात्र विगतो आवी प्रकीर्ण रचनाओमांथी मळी आवती होय छे तेथी आवी लघुकृतिओ पण मूल्यवान बने छे. कृतिओना पाठमां वाचनभूलो रही छे. नेमिनाथ भास-१, कडी ६मां 'हम बिलवति' छे, पण अहीं 'इम बिलवति' होवुं घटे. भास-२ मां क. ३ - 'मुदि' नहीं पण 'मुझ', क.६ मां 'सोच न' नहि पण 'सोवन' वांचवुं जोइए. उल्लेख सोनानी जीभनो छे. क. ७ मां 'मुख' नहि पण 'सुख' जोइए.

'अनन्तहंस गणि स्वाध्याय'मां क.५ मां 'माण' शब्द बे वार छे ते एक वार ज होवो जोईए, लहियानी भूलथी बे वार लखायो हशे. क. ७मां 'सय संवय' छे त्यां 'सय' लहियानी भूलथी वधारानुं लखायुं छे. सम्पादके आवा निरर्थक पाठो नक्की करी दूर करवाना होय छे.

विजयदानसूरिभास -

	अशुद्ध	शुद्ध
क.८	कखाय	कषाय
क.१३	परख यो	परखयो
क.१६	नडियाइ	नडियाद
क.१९	जय	(वधारानुं छे.)
क.२२	बहु रसि	वहुरसि (वहोरशे)
क.२३	विण जु	विणजु (वाणिज्य)
क.२८	रेवाणउत्र	रे वाणउत्र !

दानलक्षण अथवा दानशासन नामक संस्कृत रचना रसप्रद छे. आमां दानना आठ प्रकार दर्शाववामां आव्या छे. आठ प्रकारोनी सूचि जेमां छे ते छठ्ठो श्लोक ह.प्र.मां भ्रष्ट रूपे लखायो छे. आ श्लोक आम होवो घटे -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्यं दोषदं दान-मुत्तमं मध्यमं तथा ।
जघन्यं सर्वसङ्कीर्णं कारुण्याच्चेत्थमष्टधा ॥

उपसंहारना छठ्ठा श्लोकमां 'आसन्ने' छे, पण शुद्ध पाठ 'आसने' सन्दर्भ अनुसार संभवित जणाय छे.

जैन देरासर
नानी खाखर - ३७०४३५
जि. कच्छ, गुजरात

नोंध : १. आपणो जैनोनो मध्यकाळ परस्पर उपरना पूर्वग्रहप्रेरित आक्षेप-प्रतिआक्षेपोथी भरेलो छे. नवी प्ररूपणा के आचरणा करनार पोताने यथार्थ मानीने अन्योने शिथिलाचारी कहीने वगोवे, तो नवी प्ररूपणा-आचरणा करनारने निह्नव जेवा शब्दोथी रूढिवादीओ नवाजे; परन्तु अनेकान्त दृष्टिथी विचारीने विविध के विभिन्न मान्यतामां संतायेला सत्य-तथ्यने कोई शोधे-स्वीकारे नहि, आ तो सर्व गच्छोने तथा सर्व गच्छोना सर्व विद्वानोने लागेलुं समान दूषण छे. दूरनी वात जवा दईए, ने २०मा शतकमां तपगच्छ तथा पायचंदगच्छना धुरन्धरो वच्चे संवत्सरी तथा अन्य मुद्दाओना थयेल विवादो, चर्चापत्रो वगेरेने लक्ष्यमां लईए तो आ बाबत सुपेरे समजाय तेम छे. आपणे, आधुनिको, पूर्वजोनां चरित्र तथा लखाणोमांथी-आवां बधां वानांने गाळी-चाळी नाखीने, समन्वय तथा संवादिताने साधनारुं तत्त्व ज पकडतां शीखीए, ए ज आनो बोधपाठ होई शके. **- शी.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक परिचय

नाम : Nāni Rāyan (The Mystery unveiled)

ले. : डो. पुलिन वसा, मांडवी (कच्छ)

प्र. : क.स. हेमचन्द्राचार्य नवम जन्म स्मृति संस्कार शिक्षण निधि, अमदावाद, ई. २००७

सामान्य रीते विज्ञानना विषयोनां संशोधनात्मक पुस्तको भारेखम भाषा अने टेकनीकल शब्दोने कारणे नीरस अने अरुचि पेदा करनारां होय छे. परंतु पुरातत्त्वना संशोधननुं पुस्तक "Nāni Rāyan" The Mystery unveiled अेनी शैली अने सरळ भाषाने कारणे नवी ज भात पाडे छे. फिलाडेल्फीआ युनिवर्सिटी (अमेरिका)ना पुरातत्त्वना प्राध्यापकना शब्दोमां आ पुस्तक पुरातत्त्व विषयनुं पाठ्यपुस्तक बनवाने लायक होवा छतां सामान्य ज्ञानमां रस धरावनारी कोई पण व्यक्ति माणी शके तेवुं सरळ छे.

आ पुस्तक कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्य नवम जन्म शताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अमदावाद द्वारा प्रकाशित करवामां आव्युं छे.

लेखके २२ वर्षना लांबा गाळा दरम्यान, तेमणे करेला संशोधनने कच्छना भौगोलिक, अैतिहासिक अने पुरातत्त्वीय परिप्रेक्ष्यमां वणी लीधुं छे.

आठ प्रकरण अने बे परिशिष्ट धरावता आ पुस्तकना प्रथम प्रकरणमां लेखक आ संशोधन कई रीते शरू थयुं, तेमां तेमने केटली मुश्केलीओ पडी अने तेमणे कई कार्यपद्धति अपनावी, तेनुं वर्णन करे छे.

बीजा प्रकरणमां, कच्छनी भौगोलिक रचना अने छेल्लां पांच हजार वर्षना मानव इतिहासने उजागर करवामां आव्यो छे. सामान्य रीते कराता राजाओना इतिहासनुं वर्णन करवानी चेष्टाने बाजुअे मूकी, लेखके ते समयना लोको, तेमनी रीतभात, रीतरिवाज, धर्म अने हुन्नरनुं रसप्रद वर्णन कर्युं छे.

त्रीजा प्रकरणमां, कच्छमां थयेला पुरातत्त्वीय उत्खनन अने ते दरम्यान मळेली माहितीनुं वर्णन करवामां आव्युं छे.

चोथा प्रकरणमां सिंधुकाळथी चाली आवता वहाणवटा अने वेपारनी माहिती आपवामां आवी छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानी रायणमांथी मळेली, रोमन अने मध्यपूर्वमां बनेली वस्तुओने कारणे तेमज आ स्थळ युरोप अने मध्य पूर्व साथे वहाणवटा द्वारा जोडायेलुं होवाथी आ प्रकरण महत्त्वनुं बने छे. ते समयना जहाजो, तेमना द्वारा लेवामां आवतो मार्ग अने व्यापारी पवनोनो तेओ कई रीते उपयोग करता तेनुं वर्णन आ प्रकरणमां करवामां आव्युं छे.

पांचमा प्रकरणमां संशोधन स्थळ - नानी रायणनुं वर्णन करवामां आव्युं छे.

छठ्ठा प्रकरणमां लेखके शोधेला पुरावशेषोनुं विस्तृत वर्णन करवामां आव्युं छे.

२ मी.मी.ना, पांच हजार वर्ष जूना मणकाथी मांडीने ४०० किलो अनाज रही शके तेवी मोटी कोठी अने रोमथी आयात थयेला दारू (सुरा) नां वासणो, अनाज दळवानी रोमन घंटी जेवी असंख्य नानी-मोटी वस्तुओनुं विवरण करवामां आव्युं छे. आ तमाम पुरावशेषोनी रंगीन तसवीरो पण अहीं दर्शाववामां आवी छे.

सातमा प्रकरणमां गुजरात तेमज समग्र भारतमां थयेल समकालीन संशोधन साथे तेमणे पोताना संशोधननी सरखामणी करी छे.

आठमा अने छेल्ला प्रकरणमां लेखक आ संशोधननी, तेमने मळेला पुरावशेषो अने ऐतिहासिक माहितीना परिप्रेक्ष्यमां मूलवणी करे छे.

लेखके संशोधन अने पुस्तक लखती वखते, ख्यातनाम इतिहासकारो अने पुरातत्त्वविदोनां पुस्तकोनो अभ्यास कर्यो छे. अने आनो संदर्भ, दरेक माहिती साथे अपायेलो जोवा मळे छे. सुंदर पाना, चीवटभरी छपाई अने उत्कृष्ट रंगीन तसवीरोवाळुं आ पुस्तक, इतिहास, पुरातत्त्व, सामान्य ज्ञान अने भारतना भव्य भूतकाळमां रस लेनारा तमाम लोकोने वांचवुं गमे तेवुं छे.

आ पुस्तक मेळववा माटे डो. पुलीन वसा, मांडवी (कच्छ) नो ०९८२५५६४४४४ आ नंबर पर संपर्क करी शकाय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवां प्रकाशनो

१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रम्

कर्ता : विमलाचार्य; सं. मुनि जिनेशचन्द्रविजयः; प्र. रान्देर रोड जैन संघ, सूरत; इ. २००८, वि. २०६४

सम्भवतः १३मा शतकमां विद्यमान, मलधारगच्छीय श्रीविमलसूरिनी आ गद्यात्मक रचना छे. तेनी उपलब्ध बे ताडपत्र-प्रतिओना आधारे थयेलुं आ सम्पादन प्रकाशित थतां एक महत्त्वपूर्ण चरित्रग्रन्थ सुलभ बने छे. आ ग्रन्थ अपूर्ण उपलब्ध थयो छे. १९मा जिन मल्लिनाथना चरित्रवर्णन आगळ ते अटकी गयो छे. अलबत्त, ग्रन्थ तो पूर्ण रचायो ज होवो जोईए, परन्तु तेनी पोथी अधूरी प्राप्त थई छे तेम लागे छे. अभ्यासपूर्ण भूमिका लेख तेमज सन्दर्भात्मक परिशिष्टो द्वारा ग्रन्थने वधु उपयुक्त बनाववानो सम्पादकनो प्रयत्न प्रशस्य छे.

२. वैभव और वैराग्य :

ले. राकेश पाण्डेय; प्र. प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, न्यु दिल्ली;ई. २००७

जैन धर्मना २४ तीर्थङ्करोनां जीवनचरित्रो तथा ऐतिहासिक - पौराणिक तथ्योनुं हिन्दी भाषामां सरस प्रतिपादन करतो ग्रन्थ. मळती जाणकारी प्रमाणे, जैन धर्मविषयक कोई पुस्तक, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित थवानो आ प्रथम प्रसंग छे. जैनोनी श्वेताम्बर - दिगम्बर ए बन्ने धाराओने न्याय आपवानो समुचित तथा विवेकपूर्ण प्रयास ए आ पुस्तकनी विशेषता जणाय छे.

३. मङ्गलवादसङ्ग्रहः

सं. मुनि वैराग्यरतिविजय; प्रका. प्रवचन प्रकाशन, पूना; ई. २००७

जुदा जुदा जैन - अजैन नैयायिक ग्रथकारोए लखेल 'मङ्गलवाद'नो सङ्ग्रह आ ग्रन्थमां करवामां आव्यो छे. प्रारम्भे विस्तृत अभ्यासात्मक प्रस्तावना घणी उपयुक्त सामग्री पूरी पाडे छे.

उपाध्याय सिद्धिचन्द्रगणिए 'मङ्गलवाद' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ ज रच्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे. तेनी कर्ताना स्वहस्ते लखाएल प्रतिना आधारे थयेलुं सम्पादन अनुसन्धान ना कोई अङ्कमां प्रकाशित छे. ते आ सङ्ग्रहमां प्रथम स्थान पामेल छे. ते पछी उपाध्याय यशोविजय गणीनी तथा उपाध्याय समयसुन्दर गणीनी मङ्गलवाद - विषयक चर्चा अहीं उध्धृत छे. तेमज हरिराम तर्कवागीश तथा गङ्गेश उपाध्यायना ग्रन्थोनो मङ्गलवाद पण आमां आपेल छे.

अभ्यासक्रमो माटे एक सरस सङ्कलन.

४. मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि,

५. दादा श्रीजिनकुशलसूरि

ले. अगरचंद व भंवरलाल नाहटा, सं. म.विनयसागर; प्र. प्राकृत भारती, जयपुर; परिमार्जित संस्करण : ई. २००८

दोनों पुस्तकों में शीर्षक में बताये गये खरतरगच्छीय दो महान् आचार्यों के जीवनविषयक लेख-सामग्री संञ्चित की गई है । ऐतिहासिक जानकारी के लिए उपयुक्त प्रकाशन ।

६. आचाराङ्गसूत्र : सटीक :

प्रथम विभाग; संशोधक : पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक; सं. मुनि जम्बूविजय; प्र. सिद्धि भुवन मनोहर जैन ट्रस्ट, अमदावाद; ई. २००८

श्रीशीलाचार्यविरचित वृत्तियुक्त आचाराङ्गसूत्रना प्रथम श्रुतस्कन्धनां प्रथम चार अध्ययन जेटला अंशनुं, विविध अनेक हाथपोथीओना आधारे थयेल सम्पादन. टिप्पणीओमां पाठान्तरोनुं वैविध्य ध्यानार्ह छे. सम्पादक मुनिराजे जणाव्युं छे के-टिप्पणीगत पाठान्तरोमां घणा पाठो उपर मूकवा योग्य जणाया छे, परन्तु अमे टिप्पणीमां ज ते रहेवा दीधा छे.

मारा नम्र मते आम करवाने बदले वधु शुद्ध-सारा लागता पाठ उपर लीधा होत तो तेमनी विद्वत्तापूर्ण दृष्टिनो लाभ मळ्यो होत, अने सम्पादक तरीके तेमनुं लखेलुं नाम सार्थक ठरत. वळी, तेमने आचाराङ्ग-वृत्तिनुं सम्पादन करवानी इच्छा छे, ते अपेक्षाए पण तेमनुं थोडुंक काम हळवुं थयुं होत.

मारी जाणकारी प्रमाणे, पुण्यविजयजीए आ टीकाग्रन्थनी प्रतिलिपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करावी हशे. पछी पोतानी कायमी पध्धति प्रमाणे विभिन्न अभ्यासीओ द्वारा विविध प्रतिना पाठान्तरो तेमणे लेवडाव्या हशे. त्यारबाद तेनुं सम्पादन स्वयं करीने, पाठनिर्धारणनुं काम तेओ हाथ पर लेवाना हशे, पण दरम्यानमां स्वास्थ्य आदि कारणवश ते काम रही गयुं होय तो ते बनवाजोग छे. परन्तु ते बाकी काम पूज्य जम्बूविजयजीना हाथे थाय तो तेमां औचित्य पण हतुं अने तेम थवुं आवश्यक पण हतुं. तेम थया विना ज आ प्रकाशन थयुं छे, जे स्वाध्याय पूरतुं खपमां आवी शके.

७. श्रीचतुःशरणप्रकीर्णक

(बृहद्विवरण-संक्षिप्तवृत्ति-अवचूरि-बालावबोध-अनुवादादि समेतम्)

सं. आ. कीर्तियशसूरि; प्र. सन्मार्ग प्रकाशन, अमदावाद; सं. २०६४, ई. २०

जैनागमोमां दश प्रकीर्णक (पयन्ना) सूत्र नामे एक विभाग छे. तेमां चतुःशरणप्रकीर्णक एक आगम सूत्र छे, जे जैन सङ्घमां सैकाओथी प्रचलित छे, जेनो स्वाध्याय तथा आराधना जैन संघमां निरन्तर प्रवर्ततां होय छे. ते ज कारणे तेनां सम्पादन-प्रकाशनो पण अनेक थयां छे. तेमां महावीर जैन विद्यालयनी सम्पादित-समीक्षित वाचना ते अधिकृत गणाई छे. आ प्रकीर्णक पर अज्ञातकर्तृक विवरण तथा विविधकर्तृक लघु विवरणोनुं सङ्कलन आ प्रकाशनमां थयुं छे. आमांथी बृहद्विवरण अहीं प्रथम वार प्रकाशित थाय छे, अने अन्य विवरणो पूर्व-प्रकाशित छे, तेवुं जणाय छे. आमां मूकवामां आवेलां परिशिष्टोमां केटलांक उपयोगी छे, केटलांक बिनजरूरी अने पुस्तकनुं दळ वधारवानां आशयथी न मूकायां होय तेवुं लागे छे. प्रारम्भनां पृष्ठोमां 'प्रकीर्णक साहित्य, एक अध्ययन' शीर्षक धरावतो हिन्दी लेख (अतुलप्रसाद सिंह) 'श्रमण' सामयिकमांथी उद्धृत करवामां आव्यो छे, ते अभ्यासु जनो माटे खास उपयोगी छे. आवा लेखोनुं परिशीलन ऊंडाणपूर्वक थाय तो सम्पादकोमां सम्पादननी सज्जता विकसी शके तेमज आग्रही सङ्कुचित विचारधारा, उदार वलणमां, कदाच, फेरवाई शके.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org